Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 29 • अंक 1 • जनवरी–मार्च 2022

मूल्य रु. 25/–

यज्ञ के द्वारा व्यक्ति कर्म के बन्धन से रहित हो जाता है। उसकी चेतना अहं से परे आत्मभाव में प्रतिष्ठित हो जाती है। अविद्या का बन्धन कट जाता है। वह प्रकृति में रहता हुआ भी उससे परे रहता है। उस पर प्रकृति की कोई देनदारी नहीं होती। ऐसी स्थिति में कर्तव्य समाप्त होता है।

(गीता विमर्ष, अध्याय 3, श्लोक 17)

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गम् न पुनर्भवम्।
कामये दुःख तप्तानाम्, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 29 जनवरी-मार्च 2022 अंक : 1

भजन

गुरु के पावन चरण मनाऊँ।
निसि पखारि पूजि अतिहित सों प्रेम प्रसून चढ़ाऊँ।
सहित सनेह विनय करि पुनि-पुनि सादर सीस नवाऊँ॥
निसिदिन सुमिरन करहुं राखि रुचि भूलि न कबहुं भुलाऊँ।
पुलकि-पुलकि अपनाय लाय उर नित नव नेह बढ़ाऊँ॥
अतिसय सुखद सुभग पद पंकज मन में सदा बसाऊँ।
बार-बार बलिहार जाय निज जीवन सफल बनाऊँ॥
हे हरि अति उदार बरदानी यह माँगे मैं पाऊँ।
रामसरन सदगुरु चरनन की सेवा करि न अघाऊँ॥

भजन संख्या 1 - स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोन: 01334-240058
मोबाइल: 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमन सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइल: 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन-1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेल: rcgupta1018@gmail.com
मोबाइल: 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	भजन - सागर से भी गहरा बन्दे		6
5.	भजन - गुरु ज्ञानानंद भण्डार भरे		6
6.	भजन - आनन्द आ गया जीवन में	- राखी अग्निहोत्री, रुड़की	7
7.	भजन - तेरे आँचल की छाया	- सुनीता रघुवंशी	8
8.	गीता विमर्श – श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय (गतांक से आगे) – स्वामी रामानन्द जी		9-12
9.	भजन - तेरे अहसान का बदला	- कान्ति सिंह	12
10.	पत्र-पीयूष		13-14
11.	Letters to Seekers — Letter Nos. 1-2		15-17
12.	गुरुदेव जन्म दिवस शिविर (18 दिसम्बर 2021 से 21 दिसम्बर 2021 तक) तथा प्रवचन-सार		18-23
13.	नव वर्ष शिविर		23
14.	हृदय के उत्तम भावों से परम लाभ (कल्याण भाग-87, पृष्ठ 670-673 से उद्धृत)	- श्री जयदयाल जी गोयन्दका	24-28
15.	Prabhu Ka Naam	– Dinesh Bahl	29-30
16.	शोक समाचार		31
17.	गीता में अध्यात्म	- रवि कान्त शुक्ला	32-33
18.	ईश-प्रदत्त साधन व उनका उपयोग	- रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'	34-35
19.	दानदाताओं की सूची		36-37
20.	आभार	- अध्यक्षा, साधना परिवार	38
21.	श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2022 (14 से 21 अप्रैल 2022) - सूचना		39
22.	श्रीमद्भागवत कथा (15 से 22 जुलाई 2022) - सूचना		39
23.	साधना परिवार की कार्यकारिणी के चुनाव (20 अप्रैल 2022) - सूचना		40
24.	रामायण पाठ (23 से 31 जुलाई 2022) - सूचना		40
25.	बाल-साधना-शिविर-2022 (2 से 7 जून 2022) - सूचना		41
26.	श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य		42
27.	चित्र - गुरुदेव जन्म दिवस शिविर		43-44

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

सभी साधक भाई-बहनों को राम राम!

गत दो वर्षों में हम कोरोना महामारी की तीन लहर झेल चुके हैं जिसमें हम में से कई साधकों ने अपने सगे-सम्बन्धियों प्रियजनों को खो दिया। इस परिपेक्ष में धैर्य रखने के लिये गुरुदेव की ये पंक्तियाँ बहुत सहायक सिद्ध होती हैं –

''सब कुछ उसका है – हमारे बेटे, बेटियाँ, पति और दूसरे इष्ट जन भी। जो कुछ भी इस विश्व में घटता है – घोर से घोर, रम्य से रम्य – सब के पीछे उस परम प्रभु की अनुभूति रहती है और वह उस परम मंगल की ओर ले जाने के लिये है। हमारा सर्वस्व उन्हीं का है।'' तथा

''किसी के भी जीवन में सभी बातें भरी पूरी नहीं हो सकती हैं। हम मृत्युलोक में हैं और इसमें पग-पग पर सीमायें हैं।''

स्पष्ट निर्देश है कि जो भी परिस्थिति आती है उससे समझौता करके हमें अपने लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होना ही है। साधना धाम हरिद्वार में गुरुदेव की कृपा से जो सुधार अनवरत हो रहे हैं इस बात की पुष्टि करते हैं। बरामदों के फर्श का नवीनीकरण तथा डिस्पेंसरी में सिकाई की नई मशीन का स्थापन, इसी प्रयास की कड़ियाँ हैं।

गुरुदेव के मार्गदर्शन का अधिक से अधिक साधक लाभ उठा सकें, इसके लिये अब गुरुदेव का जितना भी साहित्य साधना धाम में उपलब्ध है वह साधकों के लिये निःशुल्क कर दिया गया है। यदि कोई साधक मूल्य देना ही चाहे तो दान पेटिका में स्वेच्छा से कुछ भी डाल सकता है। आशा है साधकगण इस सुविधा का अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

इस वर्ष नई कार्यकारिणी का चुनाव भी होना है, सो अप्रैल के निर्वाण दिवस शिविर में सभी साधकगण अपने मत का सदुपयोग कर सकते हैं।

प्रस्तुत पत्रिका में न पाठकों को नये भजन, कवितायें, साधकों के लेख, दिसम्बर शिविर के चित्र, पत्र-पीयूष व Letters to Seekers के कुछ अंश पढ़ने के लिये उपलब्ध हैं।

आगामी अंक के लिये साधकगण कृपया अपने भजन, कवितायें व लेख इत्यादि सम्पादक अथवा उपसम्पादक को ई-मेल, वाट्सएप के माध्यम से प्रेषित करें।

पत्रिका में सुधार के लिये पाठकों के सुझावों का सदा ही स्वागत है।

सागर से भी गहरा बन्दे

सागर से भी गहरा बन्दे, गुरुदेव का प्यार है।
देख लगाकर गोता इसमें, तेरा बेड़ा पार है॥

भवसागर में इकदिन तेरी, जीवन नैया डूबेगी।
खेते-खेते इकदिन तो, पतवार भी तेरी टूटेगी।
जायेगा उस पार तू कैसे, सभी ओर अँधियार है॥
देख लगाकर .....

सौंप दे अपनी जीवन नैया, वो ही पार लगायेगा।
पैर पकड़ ले जाकर के तू, वो ही राह दिखायेगा।
पापी से भी पापी को, वो करता ना इन्कार है॥
देख लगाकर .....

संत समागम हरि कथा भी, गुरु कृपा से पाओगे।
खुद आयेंगे गोविन्दा यदि गुरु का आशीष पाओगे।
गुरु बिना तो बन्दे तेरा, जीना भी बेकार है॥
देख लगाकर .....

गुरु ज्ञानानंद भण्डार भरे

गुरु ज्ञानानंद भण्डार भरे, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे।
भक्तों को भव से पार करे, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे॥

गुरु घट-घट में तुम व्यापक हो, और दीनों के प्रतिपालक हो।
जो प्रेम सहित ये पुकार करें, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे।

गुरु भक्ति भाव लखाते हैं, जग भ्रम रूप दर्शाते हैं।
भक्तों के हित अवतार धरें, गुरुदेव हरे शुरुदेव हरे॥

मम हृदय माहीं निवास करे. अंतर में जोत प्रकाश भरे।
तीनों ही गुणों से आप परे, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे॥

गुरुदेव प्रभु अखिलेश्वर हैं, साक्षात रूप परमेश्वर हैं।
जो मन में ये विश्वास धरें, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे॥

जो गुरु चरणों का ध्यान धरे, जग में सुधा रस पान करे।
नहीं पावे जन्म ना ही वो मरे, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे॥
गुरु ज्ञानानंद भण्डार भरे, गुरुदेव हरे गुरुदेव हरे॥

आनन्द आ गया जीवन में

आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया
प्रभु दूजी कोई चाह न बाकी,
आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया।

तेरी छवि ही देखूँ हर एक रूप में
तेरा ही स्पर्श लागे हर एक हाथ में
रहूँ हरदम तेरे ध्यान में डूबी
तुम बिन कौन है जीवन में, तुम बिन कौन है
प्रभु दूजी कोई चाह न बाकी,
आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया।

क्रोध के बदले में करुणा जगी है,
काम मोह भी तुझसे लगी है
गलता है मोह भी तेरे मनन से,
अहम भी शुद्ध है जीवन में, अहम भी शुद्ध है
प्रभु दूजी कोई चाह न बाकी,
आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया।

कर्ता कराने वाला तुम हो यह याद है,
अपनों के बीच में भी मन में बैराग है
जैसे आए वैसे वापस जाए
बन्धन है नहीं जीवन में, बन्धन है नहीं
प्रभु दूजी कोई चाह न बाकी
आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया।

तुमने लगाई है रे आग ये मन में,
आके बुझाए तू ही सतगुरु देह में
यह श्वासें अब हैं अमानत तेरी,
कब यह समा गया जीवन में, कब यह समा गया
प्रभु दूजी कोई चाह न बाकी
आनन्द आ गया जीवन में, आनन्द आ गया।

– राखी अग्निहोत्री, रुड़की

तेरे आँचल की छाया

तेरे आँचल की छाया को माँ मेरी नींदें तरसती हैं।
तुझसे दूर होके माँ मेरी आँखों से आँसुओं की बौछार बरसती है॥

दूर होके भी तू दूर नहीं तू मेरे दिल के इतना करीब है।
मैं जहाँ रहूँ तू पास मेरे क्या खूब मेरा नसीब है॥
अब पास नहीं वो गोद तेरी ये बात मुझे रुलाती है।
पर तेरा ही हूँ अंश मैं ये बात सुकून दे जाती है॥
तेरे आँचल की छाया को माँ मेरी नींदें तरसती हैं।
तुझसे दूर होके माँ मेरी आँखों से आँसुओं की बौछार बरसती है॥

तारीफ में तेरी कोई शब्द ही नहीं वो खुदा भी बेजुबान है।
रब की बनी इस दुनियाँ में तुझसा न कोई वरदान है॥
तो है आज ये वादा तुझसे मेरा आँखों में आँसू तो आयेंगे।
पर याद करूँ मैं जब भी तुझे ये होंठ मेरे मुस्कुरायेंगे॥
तेरे आँचल की छाया को माँ मेरी नींदें तरसती हैं।
तुझसे दूर होके माँ मेरी आँखों से आँसुओं की बौछार बरसती है॥

कदम मेरे इस दुनियाँ में तेरे दिखाये रास्ते पर जायेंगे।
देखेंगे जब भी लोग मुझे तेरी परछाई ही पायेंगे॥
तेरे आँचल की छाया को माँ मेरी नींदें तरसती हैं।
तुझसे दूर होके माँ मेरी आँखों से आँसुओं की बौछार बरसती है॥

है दिल में तू मेरे सदा मुझमें भी तु झलकती है।
है दिल में तू मेरे सदा मुझमें भी तु झलकती है॥

- सुनीता रघुवंशी

गीता विमर्श

श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय

(गतांक से आगे)

तीसरे अध्याय का कर्मयोग चतुर्थ अध्याय में **'कर्म-ब्रह्मार्पण-योग'** बन जाता है। **'कर्म-ब्रह्मार्पण-योग', 'कर्म-संन्यास-योग'** ही है। जरा सा दृष्टिकोण का परिवर्तन, इसी योग के कर्म-संन्यास के भाव को प्रकट कर देता है। बाह्य-कर्म त्याग के बिना ही किस प्रकार से कर्मों का संन्यास हो सकता है, यह रहस्य इस अध्याय में प्रकट किया गया है। इसी कारण से इस अध्याय का नाम 'कर्म-संन्यास-योग' रखा है। इस योग में पुष्ट होते-होते योगी, किस प्रकार बदलता चला जाता है, इसका भी परिचय हमें मिल जाता है, इसी अध्याय में।

अर्जुन के प्रश्न से ही इस अध्याय का प्रारम्भ होता है।

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥1॥

अर्जुन बोला –

'हे कृष्ण! तुम कर्मों का संन्यास कहते हो और फिर योग कहते हो। इन दोनों में जो एक श्रेष्ठ है, वह मुझे सुनिश्चित रूप से कहो'॥1॥

तीसरे अध्याय के आरम्भ में भी तो अर्जुन ने ऐसा ही प्रश्न किया था, (श्लोक 1, 2) वह सन्देह जो दूसरे अध्याय से जगा था, वह अभी तक पूर्णरूपेण निवृत्त नहीं हुआ। अतः ऐसे प्रश्न के लिए गुंजाइश हुई।

वास्तव में संन्यास और कर्मयोग का रहस्य गहन तो है ही। बाह्य संन्यास ही प्रायः संन्यास समझा जाता है। परन्तु, बाह्य त्याग से तो संन्यास होता नहीं, भीतर नैष्कर्म्य-लाभ से ही संन्यास होता है। उसका साधन है कर्मों का योग। 'करता हुआ अकर्ता!' यह समझना अवश्य ही कठिन है।

भगवान् अर्जुन को कर्म-संन्यास का रहस्य तो बता रहे थे, परन्तु कर्मों के योग के द्वारा। इसी रहस्य के विवेचन के लिए यह प्रश्न उपस्थित हुआ है। इस अध्याय में संन्यास तथा कर्मयोग का समन्वय पूरा होता है और इस अध्याय में कर्मयोग के स्वरूप का विवेचन भी पूरा हो जाता है।

श्री भगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते॥2॥

श्री भगवान् बोले –

'संन्यास और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। इन दोनों में कर्म-संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग विशेष (बढ़कर) है'॥2॥

संन्यास है कर्म के बाह्यत्याग का मार्ग। इसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। व्यक्ति पर जो कर्त्तव्य समाज तथा परिवार का सदस्य होने के कारण लागू होते हैं, उनका परित्याग करना कर्म-संन्यास है। किस लिए? आत्म-कल्याण के हेतु, ज्ञान-प्राप्ति के हेतु, मोक्ष के हेतु। संन्यास का दूसरा नाम ज्ञान है। यह सभी अनात्म है। आत्मतत्त्व में प्रतिष्ठित होने के लिये, अनात्मतत्त्व का परित्याग आवश्यक है। यह है मौलिक विचार-सूत्र संन्यास के मार्ग का।

'कर्मों का संन्यास करके आत्म-चिन्तन में रत रह सकता है व्यक्ति। वह स्वतन्त्रतापूर्वक विवेक में लग सकता है। प्रपञ्च से परे होकर भलीभाँति साधनशील हो सकता है। अतः कर्मों का संन्यास तो करना ही चाहिये। सांसारिक इच्छाओं को लेकर कर्म करने से व्यक्ति बन्धन बनाता है। सांसारिक कर्त्तव्यों के पालन के लिए पैसा भी चाहिए, घर भी चाहिये, लोगों से सम्बन्ध भी चाहिए। यह सभी तो इच्छा करके ही होगा। इस सबके विषय में सोचना होगा। काम भी

करना होगा। इससे तो बन्धन के सूत्र और भी दृढ़ होंगे।' ऐसे सोचता है संन्यास-मार्ग पर चलने वाला।

अर्जुन के लिये संन्यास का अर्थ था युद्ध का परित्याग, छोड़-छाड़ कर जंगल में जा बसना या भिक्षान्न पर जीवन निर्वाह करना। क्षत्रिय का कर्त्तव्य है युद्ध। उसका परित्याग ही अर्जुन का संन्यास था। भगवान् ने संन्यास की चर्चा तो की थी, परन्तु त्याग के इस बाह्य-भाव को प्रकट नहीं किया था। संन्यास शब्द ज्ञानमार्ग का पर्यायवाची है, बहुत भ्रम का कारण तो यह बात भी हुई है।

कर्मयोग के लुप्त होने के कारण नैष्कर्म्य के सूक्ष्म रहस्य को लोग भूल गये थे। संन्यास को ही नैष्कर्म्य समझने लगे हों, ऐसा लगता है।

अर्जुन पूछते हैं कि संन्यास के और कर्मयोग के मार्गों में कौन अधिक अच्छा है। भगवान् निश्चयात्मक उत्तर देते हैं। 'कल्याणकारक तो दोनों ही हैं, परन्तु कर्म-संन्यास की अपेक्षा कर्मयोग श्रेष्ठ है।'

क्या विवेक के मार्ग में चलने के लिए बाह्य त्याग अनिवार्य है? ऐसा समझा जाता था कि अनिवार्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं, क्योंकि सांख्य अर्थात् विवेक के मार्ग को संन्यास कहना, इस बात का द्योतक है। क्या कर्मयोग में आत्म-अनात्म विवेक के लिए कहीं स्थान है? इस प्रश्न का उत्तर हमें आगे मिलेगा। अस्तु,

'निःश्रेयसकरौ' – निश्रेयः करने वाले। सबसे बड़ा श्रेयः निश्रेयः है। इस से बढ़कर जीवन में कोई बढ़ौती नहीं हो सकती। 'जिसे प्राप्त करके और कुछ पाने को नहीं रहता' वही निश्रेयः है। इसी को परमार्थ – परम अर्थ – कहते हैं। जीवन की अन्तिम ऊँची से ऊँची सीढ़ी है, निश्रेयस्।

संन्यास के मार्ग वाले भी कल्याण को पाते हैं और कर्मयोग का अवलम्बन लेने वाले भी। बारहवें अध्याय में भी तो ऐसा कहा है – **'ते प्राप्नुवन्ति मामेव'** – वे मुझे ही प्राप्त करते हैं।

'परन्तु इन दोनों में कर्म का मार्ग विशेष है'। कर्मों का योग संन्यास की अपेक्षा बढ़कर है। बारहवें अध्याय में भी यही कहा है और संन्यास-मार्ग की क्लिष्टता की चर्चा की है।

क्यों विशेष है? सुगम है इसलिए, अथवा कोई और कारण भी है इस विशेषता का? इसका उत्तर हमें अगले श्लोक में मिलेगा।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते॥3॥

'जो न द्वेष करता है, न इच्छा करता है, उसे नित्य संन्यासी जानना चाहिए। हे वीर! निश्चित ही द्वंद्वों से रहित हुआ वह सुगमतापूर्वक, बन्धनों से भली प्रकार छूट जाता है'॥3॥

कर्मयोगी की स्थिति का वर्णन करते हैं। वह कर्म तो करता है, परन्तु द्वेष तथा आकांक्षा से रहित होकर। आकांक्षा से रहित होकर कर्म हो सकता है। आकांक्षा इच्छा ही तो है। वही बन्धन का कारण है। सामान्य व्यक्ति में कर्म के लिए प्रेरणा आकांक्षा से प्राप्त होती है। अर्जुन युद्ध कर रहे थे तो राज्य की लालसा से। इच्छा रजोगुण का रूप है। यह सचेष्ट करती है व्यक्ति को। यही बांधती है। आसक्ति का परिपुष्ट रूप इच्छा है। **'संगात् संजायते कामः'** – 'आसक्ति से कामना पैदा होती है।' कर्म नहीं बांधता, आकांक्षा बांधती है, व्यक्ति को। अतः कहा 'जो आकांक्षा नहीं करता'।

और 'जो द्वेष नहीं करता'। युद्ध जैसे कर्म में द्वेष तो स्वाभाविक है। अर्जुन का हृदय तो जल रहा था दुर्योधन के प्रति। किस प्रकार परेशान किया था कौरवों ने पाण्डवों को, यह कैसे भूल जाता। आज पाण्डव अत्यार्त होकर, युद्ध के सिवाय कोई रास्ता न देखते हुए, युद्ध के लिए तैयार हुए थे। वैसी परिस्थिति में कर्मयोगी का परिचय देते हुए कहते हैं, 'जो द्वेष नहीं करता'। साथ ही अर्जुन को युद्ध के लिये प्रेरणा करते हैं। स्पष्ट है युद्ध जैसा कर्म भी द्वेष-रहित हो सकता है। भगवान् स्वयं इस बात के उदाहरण थे। अर्जुन से उनका सम्बन्ध था। दुर्योधन से भी था। एक ओर वे स्वयं थे, एक ओर उनकी सेना लड़ रही थी। किसी से भी द्वेष होता तो वे उसे सहायता ही क्यों देते? यदि

इसके साथ ही युद्ध द्वेष रहित होकर न हो सकता, तो अर्जुन को प्रेरित ही क्यों करते युद्ध करने के लिए।

'जो द्वेष नहीं करता' का अर्थ हो सकता है – फल से द्वेष नहीं करता। अर्थात् पराजय को भी स्वीकार कर सकता है। जय की इच्छा नहीं, पराजय से द्वेष नहीं अर्थात् हानि-लाभ में सम रहता है।

दोनों ही बातें कर्मयोगी पर लागू होती हैं। पूर्णसमत्व में दोनों का ही समावेश है। फल के प्रति समत्व होना चाहिये और व्यक्तियों के प्रति भी। वास्तव में दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। कर्मयोगी तो द्वेष की सम्भावना से ही परे हो जाता है क्रमशः। वह सभी कुछ को ऊँची दृष्टि से, सम रहता हुआ, स्वीकार करता है और सभी व्यक्तियों को भी।

जिस व्यक्ति को यह इच्छा-द्वेष रहित स्थिति प्राप्त हुई है उसे नित्य संन्यासी जानो।

जो अब त्याग करता है और फिर नहीं करता, या जो कुछ का त्याग करता है और कुछ का त्याग नहीं करता उसका संन्यास अनित्य है। उसका त्याग तो आंशिक है। जिसने भीतर से सब कुछ छोड़ दिया है, जिसका कुछ भी पकड़ने का स्वभाव ही नहीं रहा, जिससे सभी कुछ छूटा हुआ है सदा-सदा के लिये, वह नित्य संन्यासी है। संन्यास तो उसके लिये है जिसने कुछ पकड़ा है या जो पकड़ सकता है। जिसका परिग्रह ही नहीं वह संन्यास क्या करेगा? जो द्वेष तथा इच्छा से रहित है वह तो सदा संन्यासी ही है।

द्वेष तथा इच्छा से रहित व्यक्ति की स्थिति किस प्रकार की हो जाती है? द्वेष तथा राग का जोड़ा है। राग का परिवर्धित रूप इच्छा है। राग-द्वेष से रहित व्यक्ति कुछ पकड़ता नहीं है, अतः वह कुछ छोड़ता भी नहीं। कोई चीज या व्यक्ति समीप आता है तो ठीक है, नहीं आता तो भी ठीक है। कोई कर्म हो जाता है तो भी अच्छा है, नहीं होता तो भी अच्छा है। फल अनुकूल होता है तो भी ठीक और प्रतिकूल होता है तो भी ठीक। राग-द्वेष से रहित व्यक्ति में प्रतिक्रिया नहीं होती। भीतर से परिवर्तन करने को संकल्प जागृत नहीं होता – कुछ भी परिवर्तन करने के लिये। वह सभी कुछ स्वीकार कर सकता है। वह 'समः सर्वेषु भूतेषु' भूतमात्र के प्रति सम होता है और सभी परिस्थितियों के प्रति भी।

वह जो ब्रह्म है, वह इसी प्रकार से सम है। वह सभी को पूरी जगह देता है। अपने लिये जगह नहीं रखता है। अतः सभी में व्याप्त है और सभी उसमें व्याप्त हैं। वह न दूसरों को बांधता है और न स्वयं बंधता है। वह न मांग करता है दूसरों से कि जरा सरको, न किसी की उस पर देनदारी होती है।

अतः कहा – **'सुखं बन्धात्प्रमुच्यते'** 'सुगमतापूर्वक, बन्धन से भली प्रकार मुक्त हो जाता है।' 'जो बांधता है सो बंधता है' – यह प्रकृति का नियम है। जो प्रकृति से मांग करता है किसी प्रकार भी, उस पर मांग होती है। इच्छा मांग ही तो है। द्वेष नकारात्मक मांग है। परे हटने की मांग है। उसका परिणाम भी वही होता है, जो इच्छा का। जिस स्थिति अथवा व्यक्ति से हम द्वेष करते हैं, उससे हम बँध जाते हैं।

राग-द्वेष रहित होकर कर्म करने से बन्धन कटते हैं। संस्कारों का सुगमता से क्षय होता है। राग-द्वेष से ही तो संस्कारों का निर्माण हुआ था। राग-द्वेष युक्त होकर कर्म करने से गहरा संस्कार बनता है। उसे क्षीण करने के लिए उपाय ठीक उसका उल्टा है, राग-द्वेष रहित होकर कर्म करना। कर्म का वेग खोद डालता है संस्कार को और व्यक्ति राग-द्वेष रहित भी कर्म करने से ही होता है। वैसा करने से रागद्वेषाश्रित संस्कार दूर होते हैं। क्रमशः राग-द्वेष की सम्भावना दूर हो जाती है, जब ऊँची चेतना जग जाती है ऐसी साधना करते-करते।

'सुखं – सुगमता से' क्यों कहा? जीवन का सारा क्रम ठीक चलता रहता है और उसी सिलसिले में ऐसा स्वतः हो जाता है। ज्ञानमार्ग पर चलने वाले का यह संस्कार कब और कैसे क्षय होता होगा? ज्ञानमार्ग पर चलने वाला भीतर सुप्त संस्कारों से अपने को बचाता हुआ, अपने को स्थिर करके, ज्ञान की चेतना जागृत करना चाहता है। जब वह चेतना लाभ हो जाती है तो

क्रमशः संस्कार क्षीण होते जाते हैं। जब संस्कारों की आँधी आती है तो वह चेतना लुप्त हो जाती है और जब वह चेतना जागृत होती है तो संस्कारों पर आघात करती है। यह क्रम चलता रहता है। जब तक ज्ञान की चेतना संस्कारों को पूर्णरूपेण क्षीण नहीं कर देती और स्वयं पूर्णरूप से स्थिर नहीं हो जाती, तब तक मोह की सम्भावना बनी रहती है। कई बार भ्रमित होने की सम्भावना है। पतन के बहुत से कथानक इस बात को प्रमाणित करते हैं। उस मार्ग में संस्कार को अधिकतर सूक्ष्म में ही उन्मूलित होना होता है। वहाँ कर्म के वेग से प्राप्त होने वाली सहायता लाभ नहीं हो पाती। शारीरिक स्तर में संस्कारों के क्षीण होने का सहज साधन भी नहीं होता बाह्य संन्यास के कारण।

ऐसे व्यक्ति को 'निर्द्वन्द्व' कहा। वह द्वन्द्वों से परे है। जोड़ों के प्रभाव से अप्रभावित रहता है। सम रहता है। विषमता से राग-द्वेष की जागृति स्वाभाविक है। हानि-लाभ, मानापमान, जय-पराजय आदि जोड़े हैं। वे बाहर से होने वाले परस्पर प्रतिकूल प्रभाव हैं। यह स्थिति मानसिक (बुद्धि तथा हृदयगत) समता की सूचक है। शीतोष्ण का प्रभाव शरीर पर होता है। इनके प्रति भी तो कर्मयोगी सम हो जाता है। समत्व की चेतना के पूरी तरह से शरीर में उतरने पर प्राण में भी समता आ जाती है और गर्मी-सर्दी से अप्रभावित रहना सम्भव है ऐसा समझ में आता है। प्रकृति के प्रभाव से इस अवतरण के बिना पूर्ण छुटकारा कैसा?

कर्मयोगी इस प्रकार से नित्य संन्यासी होता है। वह तो कर्म करता हुआ भी परम त्यागी है। उसके लिए संन्यास लेने का प्रश्न ही नहीं, उसके कर्मों का संन्यास हुआ ही है, क्योंकि वह राग-द्वेष रहित है।

(क्रमशः)

तेरे अहसान का बदला

तेरे अहसान का बदला चुकाया जा नहीं सकता।
प्यार इतना दिया भगवन भुलाया जा नहीं सकता॥

ना विद्या है ना बुद्धि है बहुत अज्ञान हूँ भगवन।
तुझे कैसे मैं पा जाऊँ यही वरदान दो भगवन॥
तेरे अहसान .....

तुझे जानूँ तुझे मानूँ तेरा ही ध्यान हो भगवन।
तेरी इच्छा में ही भगवन सदा कल्याण हो मेरा॥
तेरे अहसान .....

तेरी पूजा तेरी अर्चन में यह जीवन समर्पित हो।
करूँ सब कुछ समर्पण मैं यही वरदान दो भगवन॥

तेरे अहसान का बदला चुकाया जा नहीं सकता।
प्यार इतना दिया भगवन भुलाया जा नहीं सकता॥

- कान्ति सिंह

पत्र-पीयूष

गुरुदेव महाराज अपने जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते थे। उनके अनुयायियों के दुःख तथा जिज्ञासाओं का निवारण गुरुदेव पत्रों के माध्यम से भी करते थे चाहे इसके लिये उनको रातों को जागना पड़े अथवा यात्रा करते समय लिखना पड़े, किसी भी साधक अथवा साधिका का कोई भी पत्र अनुत्तरित नहीं रहता था। गुरुदेव द्वारा लिखे गये पत्रों का संग्रह करके 'पत्र-पीयूष' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी। उसी पुस्तक में से चुने हुए कुछ सर्वोपयोगी सन्देश नीचे दिये जा रहे हैं जो क्रमशः आगामी पत्रिकाओं में प्रकाशित किये जायेंगे।

❖ ❖ ❖

भगवान् के विधान में सुख तथा दुःख दोनों ही हुआ करते हैं। शरीर के जीर्ण होने पर उसका शान्त होना भी सर्वथा स्वाभाविक है। हमें दुःख होता है अपनी ममता के कारण। (पत्र 1)

❖ ❖ ❖

इन्द्रियों से मन प्रबल है, मन से बुद्धि बलवती है और आत्मा बुद्धि से भी अधिक बलशाली है। आप आत्मा हैं। यह रोग, काम तथा क्रोध मन के विकार हैं। आप मन से अधिक बलवान हैं। मन आपका है। आपका दास है, वह आपकी इच्छा के विरुद्ध चल नहीं सकता। (पत्र 2)

❖ ❖ ❖

मनुष्य जीवन का सार भगवत् प्राप्ति है। जब तक आप अपने को क्रोध के वश में रखेंगे, आप इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। (पत्र 2)

❖ ❖ ❖

क्रोध के वशीभूत होने का अर्थ है हरि मिलन की अवधि को और भी लम्बा करना। क्रोध कोई आपके बाहर की चीज़ नहीं है, न आपसे बलवती है जो आप इसके आगे अवश्य झुकें। आप तो आत्मा हैं। शान्त और शक्ति के स्वरूप हैं, श्री राम के अंश हैं। सतत आनन्दमय हैं, आप पर क्रोध कैसे काबू पा सकता है? (पत्र 2)

❖ ❖ ❖

श्री राम पद में रमण करने का मेरी समझ में नाम से बढ़कर कोई साधन नहीं। इसके साथ-साथ हम जितना अपने आपको प्रभु के समर्पण करते चले जाते हैं, अपने मंगल के लिये अपने साधन का आश्रय न लेकर उसकी कृपा का आश्रय लेते हैं, उतनी ही जल्दी हम आन्तरिक शान्ति को लाभ करते हैं। (पत्र 3)

❖ ❖ ❖

जिस व्यक्ति के पास हरिनाम प्राप्त है, उसे भय किस प्रकार का? वह तो जगजननी महाशक्ति की सदैव आनन्दमयी गोद में विलास करता है और माता का विधान इसके लिये सर्वदा आनन्दमय ही होता है। ज्यों-ज्यों हम परम प्रभु के इस स्वरूप को समझते हैं, हम में उसके प्रति आत्म समर्पण की भावना प्रबल होती जाती है। हम अपनी इच्छाओं को, संकल्पों तथा विकल्पों को, उसकी लीला समझते हुये उस ही के अर्पण करते चले जाते हैं। 'प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो।' (पत्र 4)

❖ ❖ ❖

आप सतत स्मरण का अभ्यास करियेगा। महाशक्ति की क्रिया हममें रात-दिन अनवरत होती रहती है। हमें अपने को उसके हाथों अर्पण करना ही है। (पत्र 4)

❖ ❖ ❖

साधना में अधिक बड़ी बात है प्रभु पर विश्वास, उसकी दयालुता, सर्वशक्तिमत्ता का अविचल निश्चय। जिस व्यक्ति ने परमपिता के विश्वास को प्राप्त किया है, उसकी सन्निधि को प्रतिक्षण प्रतीत करता है, वह ऐसे अनुभव करता है जैसे माता की गोदी में बालक अनुभव करता है। दिन में समय-समय पर हम चिन्तन करें - **'परमात्मदेव श्रीराम, तुम परम शुद्ध, बुद्ध, नित्य, सर्वशक्तिमान्, सच्चिदानन्द स्वरूप, ज्योतिर्मय एकमेवाद्वितीय परमेश्वर हो, परम-पुरुष दयालु देवाधिदेव हो! तुम्हें बार-बार नमस्कार हो।'** और मन ही मन प्रभु को समीप समझ कर उसके आगे झुक जाइयेगा। इस प्रकार प्रभु की समीपता का भान बना रहने लगता है। (पत्र 5)

❖ ❖ ❖

प्रभु भक्त हरि की प्राप्ति के लिए अपने बाहुबल का आश्रय नहीं लेता। वह तो यह निश्चित रूप से जानता है कि केवल मात्र प्रभु की कृपा, महाशक्ति ही मुझ में अवतरित होकर मुझे निर्मल कर सकती है और प्रभु के चरणों में संयुक्त कर सकती है। प्रभु के नाम का वह अधिकाधिक स्मरण करता है, परन्तु इस प्रकार से जैसे कि भूखे को रोटी की स्मृति होती है, प्यारे को प्यारे की स्मृति होती है। वह प्रभु का स्मरण प्रभु का पूजन रूप करता है। निश्चित ही प्रभु कृपा उस पर अवतरित होती है और उसको निर्मल करती चली जाती है। काम-क्रोधादि विकार धीरे-धीरे शान्त होते चले जाते हैं और वह प्रभु-पगों के निकट पहुँचता चला जाता है और उतावला भी नहीं होता क्योंकि वह जानता है कि प्रभु उसका अधिकाधिक हित चाहते हैं और करते हैं। (पत्र 6)

❖ ❖ ❖

हम अतुल बल के भण्डार हैं। हमें यह पहिचानना होगा और हम फिर अपने में बल की प्रतीति करने लगेंगे। आत्मा भागवत् अंश है। शक्ति का, ज्ञान का, आनन्द का, अपार भण्डार है।

अपने को प्रभु का पुत्र समझिएगा। उसका रक्षामय, प्रेममय हस्त, शक्तिमय हस्त हमेशा हमारे मस्तक पर है। हम सदा उस जगजननी की आनन्दमयी गोद में हैं। ऐसी भावना कीजिएगा। (पत्र 7)

❖ ❖ ❖

हरि-कृपा प्राप्त व्यक्ति परिस्थितियों का दास नहीं होता। वह अपने संकल्प को भागवत् संकल्प से एक कर देता है और प्रकृति उसका अनुकरण करती है। श्रीराम के पतित पावन नाम का आश्रय लेने वाला व्यक्ति यदि अपने को दुर्बल समझे तो अभी वह उस परम प्रभु की महिमा को कुछ भी नहीं समझ पाया।

प्रभु का अटल भरोसा रखना चाहिए। उसने हमारी बाँह को पकड़ा है तो वह अन्त तक निभाएगा। (पत्र 7)

❖ ❖ ❖

भजन साधना में सब से बड़ी वस्तु है भगवान में जीवित विश्वास, उनकी सतत अवतरित होने वाली कृपा का भरोसा और प्रभु के प्रति सर्वस्व समर्पण। यह भक्त का धन है। (पत्र 9)

❖ ❖ ❖

ज्यों-ज्यों नाम हममें रमने लगता है, प्रभु की कृपा हम पर होने लगती है। हम प्रतीत करने लगते हैं कि हमारा अन्तरात्मा बदलता चला जा रहा है और हम उस शान्ति के धाम, करुणा के निधि, श्रीराम के समीप होते चले जाते हैं। (पत्र 9)

Letters to Seekers

Letter No. 1

Dharmasala.

August, 1935

My dear .....,

I finished my meals at about 12-30 and went about my 'humble hut' to discover what trees were there. Such an important business I had put off to this day. Long ago, just by a stroke of good luck, I had caught sight of an 'amrud' tree in fruit. Eh ! They are quite unripe yet. So I went about with my little native friend Pundi, he the teacher – and I an ignorant pupil of his. There are more than 12 lemons on the little plant, growing by the side of the 'little stream' that passes by our dominions. Two khatta-plants, well laden with yellow and green leaves – not fruit, two nashpatis, an alubukhara, a half dry apple, a reetha (in fruit) constitute the important features of our scattered 'garden'. As I looked at the apple which is just struggling for an honourable existence, I pondered over the serious lack of observation and interest. How many of us can tell an apple leaf from a peach one?

I was sitting under the shade in the little lawn behind (or in front of) my hut when Makoro (another friend) came with your letter – the longest and the most pleasant and the most legible (I mean beautifully penned) of your letters.

I am yet a child, nay, better still a baby, and I am going to talk of some great things – things which are subtle and of which I have but no comprehension, even no perception.

Friendship is one of them. It is physical, mental and spiritual (or of the heart). We befriend the person, – the mentality and the soul. It is a training in selflessness – and very important at that, whether we are conscious of it or not. And spiritual friendship is the ideal, though others are good in their places. How akin it is to love! I see no difference at all.

I feel ashamed when I think of deciding about it – letting go or maintaining. How fiercely do I wish that I could run above the physical person, run even above the mental and enjoy the friendship of other souls. But it all requires steadfast toiling, passing through it stage by stage, making myself worthy of it before I can demand and get it. Through this education of love can we learn to forego, forgive and sacrifice and we should learn it all – I think the more we are conscious of this side of friendship, the easier would become problems of our relationship as friends. Most of them would not demand an answer. When I talk so tall, I do not imply that I do it, but wish I could do it – rather could try to do it. I see ideal of friendship in.... I see it in you, but not so high. It is through this that I have been raised to

the present state of consciousness. The faith and love of other hearts have drawn this heart up. I owe them all. As regards writing of letters, they are the primary means of communication, and cannot be entirely neglected. What I imply by, 'Let us not disturb others....', is that we need not demand regular replies from those who do not like to give – or do not do, any way. Let us send our love when our heart overflows; let us communicate our feelings or what we will, whenever we desire. The response shall come, it shall come certainly, only if we keep on stroking (unselfishly) and shall be severe. We cannot say how long will it take. Why talk or complain? Forgive and forget – that is what I wish we could do.

Now what I feel is that I ought to see and judge the growth of each mind before I give my ideas to them. To some they are utterly confusing, some require very gentle handling and so on. Also, I have sought pleasure in seeking audiences and have declared my views, perhaps to seek fragments of praise or to impress my importance. That is what people call vanity and that is what I wish I could get rid of. I need develop also the capacity to contain, but it never means that I should be silent where I need open my lips. Subtle and sacred things lose a lot of their charm and sanctity when frequently talked of or preached. What we wish to acquire is a personality and a soul that will constantly emanate virtue and will infect all with whom it comes in contact. Let our acts teach – without them our tongues are powerless. One thing more, in trying to raise others we raise ourselves, in trying to help we help ourselves. I wonder what on earth do you mean by this devil of a sentence. Shishu is more attractive than...! Your love is not less attractive. It is thoroughly mutual and balanced. I did not imply that you should stop correspondence altogether and if I did it, I feel it was wrong on my part. Only I wish we could make correspondence more fruitful. Our love has not come up to the stage when our expectations can be foreseen by each other.

I am, yours as ever,

Shishu

Note: This letter was written to a friend when Swamiji was still a student.

❖ ❖ ❖

Letter No. 2 Bhilwara.

07.05.1944

My dear .....,

Yours of the 5th to hand. I have been very busy these days and hence could not reply earlier. I was glad to have news of you. He is so gracious indeed.

You will do well to read the chapter on "aikagrata" in Adhyatmic Sadhna part 1. You must understand the nemesis of these flitting thoughts. A higher power is controlling the whole process in meditation, even this dispensation. The more you can relax and be at onement with that power, the greater will be the resulting benefit. That Mahashakti has got its hold upon you and is taking you ahead towards greater balance, strength, peace and bliss. Have full faith in Her. Let yourself go in Her hands as fully as you can. Aspire for the fullest possible surrender.

More books? You may turn to the Gita and Ramayan. Life of Ram Krishna with a foreword by M.K. Gandhi, a Rama Krishna Mission publication, you may read with profit. But read it with discrimination. Be not carried away. 'At the feet of the Master', a T.S. publication will also be useful. 'In tune with the Infinite' by R.W. Trine, is another commendable study.

Life, you must learn to look at from a higher stand point. The so called frustrations of life are perhaps more valuable for our evolution than a series of success. Capabilities are just a factor. They have a certain value in the world, but that is not ultimate. Life has a higher purpose and all our values must be determined by it.

Understand life well. Fear and worry result when we do not understand. If it all comes from Him, it comes for our well-being. What we consider as the worst in life is not the worst actually when it comes in His plan of evolution. Under His reign does there remain anything to fear, or any thing to worry for? If there is, then we do not known Him. We can not but accept all that comes with open arms, as it comes from Him.

The heart will learn this lesson gradually, not all at once. Let it take its time. Be confident, the lesson it shall have to learn and get rid of fear and worry.

What have you written about? You are welcome to write, about the miracle of Ram Nama.

Have you seen Utpadni Shakti, my latest publication? Do you think it will be worthwhile i.e. useful to have a version of it in English? If so, can you suggest any one who can do it?

Yours in the Lord,

Ramanand

❖ ❖ ❖

गुरुदेव जन्म दिवस शिविर

(18 दिसम्बर 2021 से 21 दिसम्बर 2021 तक)

साधना धाम हरिद्वार में जन्म दिवस शिविर का आयोजन किया गया। दिनांक 14 दिसम्बर 2021 को 11.00 बजे पूर्वाह्न से अखण्ड रामचरितमानस का पाठ आरम्भ हुआ, जिसकी पूर्ति 15 दिसम्बर को हुई। 15 दिसम्बर सायं से 16 दिसम्बर प्रातः तक अखण्ड जाप किया गया। 16 दिसम्बर को धाम के प्रांगण में हवन-पूजन किया गया, उसके उपरान्त 11 ब्राह्मणों को ब्रह्मभोज कराया गया। उस समय लगभग 200 साधक-साधिकायें उपस्थित थे। दिन के 2.00 बजे साधना-मन्दिर में गुरुदेव का जन्मोत्सव धूमधाम से मनाया गया। मन्दिर तथा धाम के प्रांगण को फूलों, लाइटों और गुब्बारों से सजाया गया। भजन, कीर्तन, जाप आदि करते हुए मिल्क-केक काट कर वितरित किया गया।

सायं 6.00 बजे तक 9.00 बजे तक भजन-सन्ध्या का आयोजन किया गया जिसमें साधकों द्वारा ही गायन तथा वाद्य-यन्त्रों के साधनों का प्रयोग करते हुए मन्त्र-मुग्ध करने वाला भजन-कीर्तन किया गया।

भजन-सन्ध्या का संयोजन बहन अरुणा पाण्डेय तथा भाई पुरन्दर तिवारी द्वारा किया गया। दिनांक 17 दिसम्बर को अवकाश रखकर 18 दिसम्बर अपराह्न को शिविर आरम्भ हुआ जिसकी पूर्ति 21 दिसम्बर पूर्वाह्न को करके बाहर से आये हुए साधकगण विदा हो गये।

प्रवचन-सार

शिविर में साधकों द्वारा किये गये प्रवचनों का सार इस प्रकार है -

श्रीमती रमन सेखड़ी जी (प्रवचन-1)

भगवान कृष्ण ने युद्ध के मैदान में जो गीता अर्जुन को सुनाई थी वह केवल अर्जुन के लिये नहीं थी वरन् उन सभी सांसारिक जनों के लिये थी जो अर्जुन की भाँति क्या करूँ क्या न करूँ के डोले में झूलते रहते हैं।

धृतराष्ट्र मोह का प्रतीक है। उसको धूर्तराष्ट्र भी कह सकते हैं क्योंकि उसे राज्य के प्रति मोह हो गया था। वह भूल गया था कि मानव तो प्रभु के हाथ का खिलौना मात्र है। यहाँ उसका अपना कुछ भी नहीं है। इसलिये मोह करना व्यर्थ है।

जब सब कुछ छोड़ना ही है तो मोह क्यों करें? युद्ध केवल अर्जुन ही नहीं कर रहा था। हम सब भी युद्ध कर रहे हैं। हमारे भीतर जो विकार है उन्हीं से युद्ध करना है। एक व्यक्ति गन्दा पात्र लेकर एक सेठ से दूध मांगने गया। सेठ ने कहा इस गन्दे पात्र में दूध लोगे तो सारा दूध बेकार हो जायेगा। पहले इसको साफ करो, फिर दूध लो। इसी प्रकार हमने भी आत्मा रूपी पात्र को मोह रूपी मैल से गन्दा कर रखा है। अन्य विकार भी इसमें भर रखे हैं। ये सब विकार विक्षेप हैं, आवरण हैं जो भगवान से मिलने में बाधा डालते हैं। पता नहीं कितने जन्मों के विकार एकत्रित कर रखे हैं जिन्हें हम नहीं जानते किन्तु भगवान जानते हैं।

गुरु शरीर नहीं है, एक तत्त्व है। भगवान कहते हैं जो इस तत्त्व को जान लेता है उसका जीवन सफल हो जाता है। जब हम राग-द्वेष के झंझटों से

बाहर आयेंगे तभी उस परमपिता से जुड़ पायेंगे। द्वेष किसी से भी नहीं करना, सभी को आगे बढ़ाना है जैसे गुरुदेव महाराज ने किया। गुरु हर समय हमारे साथ हैं। सूक्ष्म नेत्रों से उनके दिव्य कर्मों का दर्शन करते रहना चाहिये।

बूँद जब बाहर है तो वह अलग है, जब सागर में मिल जाती है तो सागर बन जाती है। इसी प्रकार आत्मा जब परमात्मा से एक हो जाती है तो वह परमात्मा बन जाती है। राग, भय, द्वेष, क्रोध आदि हमें परमात्मा से अलग करने का कार्य करते हैं। क्रोध तो स्वयं को ही जलाता है। यदि हम प्रभु के आश्रित हो जायेंगे और सभी कर्म प्रभु को समर्पित करते जायेंगे तो हमारे सारे कार्य प्रभु के कार्य हो जायेंगे। प्रभु की आज्ञा मानकर ही सब काम करने हैं। छोटा बच्चा माँ-बाप पर आश्रित होता है और निश्चिन्त रहता है। उसकी हर आवश्यकता पूरी होती रहती है। हम इस जन्म में उससे जुड़े रहें। मन में किसी के प्रति कुविचार न लायें क्योंकि करवाने वाले तो प्रभु ही हैं।

हम स्वयं को भाग्यशाली मानें कि ऐसे गुरु से जुड़े हैं। गुरु जी हीरे की तरह हैं, सबको चमका रहे हैं। बद्रीनाथ में सारे सन्तों ने गुरुदेव की आरती करवाई थी। नीम करोली बाबा ने भी उनको पहचाना।

श्रीमती रमन सेखड़ी जी (प्रवचन-2)

सर्वप्रथम सुमित्रा माँ का आभार व्यक्त किया जिन्होंने यह साधना धाम बनवाया। सुमित्रा माँ ने अनेक स्थानों में जा-जा कर अखण्ड रामायण का पाठ कर-कर के झोली पसार कर धाम के लिये सहयोग मांगा था, तब जाकर कहीं इतना विशाल धाम बन पाया था जो आज साधकों का प्राथमिक तीर्थ-स्थल बन गया है और जिसके माध्यम से हम साधक गत 60-65 वर्षों से प्रति वर्ष चार शिविर सुविधापूर्वक आयोजित कर पाते हैं - भोजन और आवासीय चिन्ता से मुक्त होकर।

जब दो व्यक्ति आपस में मिलते हैं तो एक-दूसरे से पूछते हैं कि क्या आप स्वस्थ हैं। स्वस्थ का मतलब स्व में स्थित होना होता है। सत्संग का मतलब गाना-बजाना नहीं, सत्य का संग है। आत्म-निरीक्षण हम स्वयं करें, अपना बदलाव स्वयं करें, कोई दूसरा कहेगा तो बुरा लगेगा। जीवन अनुभव की पाठशाला है। जो अनुभव आगे बढ़ाने में सहायक है केवल वही सार्थक है। जैसे सूर्य अपना कार्य करके चले जाते हैं, उसी प्रकार लोग आकर अपना कार्य करते हैं और चले जाते हैं। सभी जीवों का शरीर धारण करने का विशेष कारण होता है और सभी को विशेष कार्य सम्पन्न करना होता है, साथ ही अपना प्रारब्ध भी भोगना होता है जिसकी पूर्ति होते ही यह शरीर त्यागना पड़ता है। इसी जीवन में हम सुख भी भोगते हैं और कष्ट भी, किन्तु सुख की अपेक्षा कष्ट अधिक मूल्यवान हैं क्योंकि कष्ट हमें बहुत कुछ सिखा कर जाता है। जीवन में उन्नति करने के लिये संघर्ष आवश्यक है। जो कार्य सामने आता है उसको बिना घबराये करते जाते हैं तो आगे का रास्ता खुलता चला जाता है। संस्कार से मुक्त होकर आगे की यात्रा करनी है।

करन करावन केवल प्रभु ही हैं। नया व्यक्तित्त्व हमारे नये जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रीमती सुशीला जायसवाल जी

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

सभी साधक भाई बहनों को गुरुदेव भगवान के जन्म दिन की बहुत-बहुत बधाई।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता के अध्याय 4 के श्लोक 24वें से 30वें तक में 12 प्रकार के यज्ञ बताये हैं। यहाँ पर हम 28वें श्लोक में बताये गये कर्तव्य कर्म रूप चार यज्ञों के विषय में चर्चा करेंगे।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥

संशितव्रता यानि महाव्रत करने वाले। जिनमें पाँच यम हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। इसके सिवाय इस श्लोक में आये चारों यज्ञों में जो-जो पालनीय व्रत अर्थात् नियम हैं उन पर दृढ़ रहकर उनका पालन करने वाले भी सब संशितव्रता: हैं।

द्रव्ययज्ञ - मिली हुई वस्तु को निष्काम भाव से दूसरों की सेवा में लगाना द्रव्यमय यज्ञ है। द्रव्य तीनों शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) सहित सम्पूर्ण पदार्थों को अपना और अपने लिये न मानकर नि:स्वार्थ भाव से उन्हीं का मानकर उन्हीं की सेवा में लगाने से द्रव्ययज्ञ सिद्ध हो जाता है।

तपोयज्ञ - अपने कर्त्तव्य के पालन में जो-जो प्रतिकूलतायें, कठिनाइयाँ आयें उन्हें प्रसन्नता पूर्वक सह लेना तपोयज्ञ है। अपने कर्त्तव्य से थोड़ा भी विचलित न हो तो यह सबसे बड़ा तप है जो शीघ्र ही सिद्धि देने वाला होता है। भोगों में आसक्ति रहने के कारण अनुकूलता अच्छी और प्रतिकूलता बुरी लगती है, इसी कारण प्रतिकूलता का महत्त्व समझ में नहीं आता।

योगयज्ञ - योग का तात्पर्य अन्त:करण की समता है। कार्य की पूर्ति और अपूर्ति में, फल की प्राप्ति और अप्राप्ति में, अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में अन्त:करण में हलचल, राग द्वेष, हर्ष शोक, सुख-दु:ख का न होना। इस तरह सम रहना ही योगयज्ञ है।

स्वाध्याय ज्ञानयज्ञ - केवल लोक हित के लिये गीता, रामायण, सत् शास्त्रों आदि का यथाधिकार मनन विचारपूर्वक पठन-पाठन करना, नाम जप ध्यान आदि का अभ्यास सब स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ हैं। गीता में भी भगवान ने कहा है कि जो इस गीता शास्त्र का अध्ययन करेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा।

तात्पर्य यह है कि गीता का स्वाध्याय ज्ञानयज्ञ है। गीता के भावों में गहरे उतरकर विचार करना, उसके भावों को समझने की चेष्टा करना आदि सब स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ हैं।

श्रीमती कमला वर्मा जी

बहन कमला जी ने सदा की भाँति अपना यह प्रवचन भी गोस्वामी तुलसीदास की निम्नलिखित दोहे से आरम्भ किया -

आजु धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब बिधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन॥

गीता में अर्जुन के माध्यम से भगवान ने हम सभी को शिक्षा दी है। भगवान ने गीता के छठे अध्याय के 46वें श्लोक में अर्जुन को योगी होने का निर्देश दिया है क्योंकि योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ है और सकाम कर्म करने वालों से तो श्रेष्ठ है ही।

गुरुदेव महाराज ने कहा है कि व्रत के द्वारा हम अपने भीतर विराजमान भगवान को कष्ट देते हैं। भगवान ने गीता के सत्रहवें अध्याय में तीन प्रकार के तप बताये हैं - 1. शरीर द्वारा दूसरों की सेवा करके, 2. वाणी द्वारा सत्य, प्रिय तथा हितकारी वचन बोल कर, तथा 3. मन द्वारा भगवान का चिन्तन करके।

भगवान ने कहा है - समोऽहम् सर्वभूतेषु। अर्थात् जो हर जगह भगवान को देखता है - हर फूल में, हर कली में, कण-कण में भगवान का दर्शन करता है, वह श्रेष्ठ है। गुरुदेव महाराज ने कहा है - हम विकसित होते-होते आज मनुष्य जन्म में आये हैं। अभी आगे भी जाना है - देवत्व में और देवत्व से दिव्यत्व में। इसीलिये हमें हर समय प्रभु से जुड़े रहना है। प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में अपने को चार्ज करके, फिर पूरे दिन सब कार्य करते हुए जुड़े रहना है।

जब हमारी आत्मा की पुकार प्रभु के लिये होती है तब भगवान पर पूर्ण विश्वास करके श्रद्धापूर्वक भगवान का भजन करते हैं। हमारी इन्द्रियाँ जो इधर-उधर भागती रहती थीं वह भी प्रभु में लगने लगती हैं।

दान-पुण्य आदि से तो हम उसका फल भोगकर पुनः पृथ्वी पर आ जाते हैं, ईश्वर का भजन हमें दिव्य लोक में ले जाता है। कर्म करने की भावना पर निर्भर करता है।

यदि हम सकाम भाव से कर्म करते हैं तो वह बन्धन-कारक होता है और निष्काम भाव से करते हैं तो वही कर्म मोक्ष का देने वाला हो जाता है। भक्ति मार्ग में हम संयम करने में अपनी शक्ति को व्यर्थ नहीं गंवाते हैं। जो अवांछनीय है वह स्वयं ही छूटता जाता है, जो वांछनीय है वही रह जाता है। आध्यात्मिक पूँजी ही हमारे साथ जायेगी। भक्ति मार्ग में कहीं कोई हानि नहीं है।

बिगड़ी जनम अनेक की सुधरे अबहीं आज।
होहिं राम को नाम जपि तुलसी तजि कुसमाज॥

श्री सुधीर कान्त अग्रवाल जी

गुरुदेव महाराज ने कहा है - साधना और व्यवहार एक दूसरे पर आधारित हैं। साधना पथ पर अग्रसर होने के लिये अच्छा व्यवहार होना अति आवश्यक है और यदि हम साधक हैं तो व्यवहार में सुधार स्वतः ही होता जाता है। साधना का लक्ष्य है परम पद की प्राप्ति।

नाम जप का रास्ता जो गुरुदेव ने दिया है वह अत्यन्त कल्याणकारी है। गुरुदेव तो भगवान के अवतार ही थे। उनकी कृपा का हाथ जिसके सिर पर रखा जाता था उसको अनायास ही दिव्यता का अनुमान हो जाता था। गुरुदेव कहा करते थे -

क्रोध आये तो आप तटस्थ हो जाइये, कोई प्रतिक्रिया मत कीजिये। यदि आपको लगता है कि आप स्वभाव से ही क्रोधी हैं बार-बार आपको क्रोध आता रहता है तो आप लिखिये कि दिन में कितनी बार क्रोध आया, किस बात पर आया और किस-किस पर आया। इससे आप क्रोध पर नियन्त्रण करने में सफल हो पायेंगे।

गुरुदेव के निर्देश हैं -

- गृहस्थ की जिम्मेदारी पूरी करो।
- साधना में त्याग, सेवा और समर्पण होता है।
- अखण्ड जाप से दस गुणा लाभ होता है।
- रास्ता अवश्य मिलेगा, धैर्य रखने की आवश्यकता है - रोजमर्रा की समस्याएं सुलझती जाती हैं।
- धीरे-धीरे पुराने संस्कार क्षीण होते जाते हैं, नये बनते नहीं हैं। इस प्रकार मानव मोक्ष की ओर अग्रसर होता जाता है।
- हमारी पुकार सच्ची होनी चाहिये और आस्था पक्की होनी चाहिये।

श्री रवि कान्त शुक्ल जी

साधना विचारों का निर्माण करती है और विचार साधना-पथ को प्रशस्त करता है। गुरु जी ने हमें साधना का पथ दिखाया। जिससे कुछ लेते हैं उसका आभार व्यक्त करना चाहिये। हम गुरु महाराज के आभारी हैं जिन्होंने हमें सन्मार्ग पर लगाया। गुरु जी ने कहा है - ज्यों-ज्यों हम साधना के पथ पर अग्रसर होंगे त्यों-त्यों हमारी पुकार बलवती होती जायेगी।

पुकार किसी अभाव की सूचक होती है। शरीर की मांग? वो तो पूर्ति से पूर्ण हो जाती है। प्राण विभिन्न प्रकार के भोगों को मांगता है और कुछ समय के लिये तृप्त हो जाता है। हृदय आत्मश्लाघा से तृप्त होता है, ऐसा प्रतीत होता है। बुद्धि अपने लिये कार्य क्षेत्र की मांग करती है और उसे पाकर आनन्दित होती है, परन्तु आत्मा तो प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करके ही तृप्त होती है। उसकी शान्ति व तृप्ति तो भगवान से पूर्णरूपेण ऐक्य को प्राप्त करके ही होती है। इस प्रकार की शान्ति का प्रयत्न ही आध्यात्मिक साधन का प्रयत्न है।

प्रायः हमारे भीतर से एक बहुत गहराई से पुकार निकलती है। वह अव्यक्त सी होती है, हम उसे पहचान नहीं सकते। भगवान क्या है - इस विषय में अध्यात्म विकास में लिखा है कि वह विश्व का आदि कारण है, विश्व उसकी अभिव्यक्ति है।

पूर्ण ऐक्य-प्राप्त तो वह है जो इस निर्विशेष निर्गुण में स्थिर रहता है। उसकी स्थिति को किसी प्रकार भंग नहीं किया जा सकता, उसका संकल्प महाशक्ति का संकल्प होता है। ऐसे व्यक्ति के लिये ही कहा जाता है -

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

जिस प्रकार पुरुषोत्तम अपने पद पर स्थिर होते हुए भी इस विश्व की लीला करते हैं और अपने पद से च्युत नहीं होते, ऐसा ही पूर्ण ऐक्य-प्राप्त व्यक्ति होता है।

श्री दीपक दीक्षित जी

हम सब लोग गुरुदेव महाराज के निर्देशन में साधना में प्रवेश करते हैं तो राम नाम हमें मन्त्र के रूप में प्राप्त होता है। सभी ग्रन्थों में राम नाम की महिमा का वर्णन मिलता है पर वही नाम जब हमें गुरुदेव के द्वारा प्राप्त होता है तो वो दिव्य होता है। सूर्पनखा ने राम का दर्शन तो किया पर वो किसी गुरु के द्वारा दीक्षित नहीं थी। उसके मन में छल-कपट था, इसलिये उसका रूप ही कुरूप कर दिया। इसके विपरीत शबरी ने अपने गुरु के द्वारा दीक्षित होते हुए दिव्य भाव से राम के दर्शन किये और उसे दिव्यत्व की प्राप्ति हुई। गुरु के द्वारा मिले हुए नाम से अवश्य ही हमारा कल्याण होता है।

गुरु में ब्रह्मा, विष्णु, महेश - तीनों का वास है। अतः राम नाम को जितना जपेंगे उतना लाभान्वित होते जायेंगे।

श्री विष्णु कुमार गोयल जी

भगवान से पूर्ण ऐक्य प्राप्त करने के लिये केवल निर्गुण पथ पर ही नहीं चलना है, उसके लिये सगुण भक्ति आवश्यक है, ऐसा गुरूदेव कहते हैं। मीरा व सूरदास ने सगुण उपासना से प्रभु को प्राप्त किया। गुरुदेव के कथनानुसार जो परम तत्व को प्रकृति से परे जानता है उसे जानना नहीं कह सकते।

प्रभु की तीन शक्ति हैं - परा, अपरा, माया।

परा - पशु-पक्षी, जीव-जन्तु।

अपरा - चैतन्य शक्ति।

माया - परा, अपरा मिल कर माया बनाती हैं।

चैतन्य सर्वप्रथम पत्थर में आया। तत्पश्चात वनस्पति में, फिर क्रमशः पशु और मनुष्य में। फिर माया रूपी मैल का आवरण पड़ा। उसी मैल को हम साधना द्वारा साफ करते हैं।

गुरुदेव ने एक बात बड़ी साफ कही है कि मार्ग बहुत हैं जो ईश्वर तक जाते हैं। परन्तु मेरे मार्ग पर चलने वाले भी ईश्वर को प्राप्त करते हैं। गुरुदेव से मिला राम-नाम का मन्त्र गुरुदेव की शक्ति से ओत-प्रोत है। गुरुदेव के अन्दर माँ महाशक्ति उतर कर उस मन्त्र को और भी दिव्य बना देती है।

श्री गीता जी में शरणागति क्यों? जब अर्जुन हताश होकर शिथिल हो गया तो कृष्ण भगवान नाना प्रकार से उसे उत्साहित करते हैं। गीता में आदि से अन्त तक शरणागति है।

भगवान भक्त के अधीन हैं। रामायण में भगवान ने स्वयं ही कहा है -

तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरें।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥

जीव जब तक शरणागति स्वीकार नहीं करता, वो प्रकृति के वश में रहता है। इसीलिये गीता में कहा गया है -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अर्थात् सभी का आश्रय छोड़कर केवल प्रभु की शरण हो जा।

प्रवचन के अन्त में सभी साधकों का आभार व्यक्त किया गया।

श्री विजयेन्द्र पाल भण्डारी जी

गुरुदेव महाराज इतने महान हैं कि उन्हें समझ पाना बहुत ही कठिन है। जैसे गगन की थाह कोई

नहीं पा सकता ऐसे ही गुरुदेव की महानता भी अपार है। गुरुदेव के वचन खंगाले, समझे, मनन करे, परन्तु पूरी तरह समझ नहीं पाया। इतना ही समझ पाया कि मनुष्य प्रभु के हाथों में कठपुतली है। कब, किससे क्या काम कराना है, यह सब प्रभु ही निश्चित करते हैं। जो व्यक्ति, नाम से जुड़ता है उसके मन में आसक्ति कम हो जाती है। जब गुरुदेव तरंग भेजते हैं तभी हम यन्त्र बन पाते हैं। जिन्होंने उस तरंग को पाया, वे ही आगे बढ़ पाये हैं तथा औरों को बढ़ा पाते हैं।

आप भी सूझवान बनिये, प्रभु की कृपा आप पर अवश्य बरसेगी, इसमें संशय नहीं।

श्रीमती अरुणा पाण्डेय जी

तव माया बस फिरउँ भुलाना।
ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥

तुलसी दास बाबा कहते हैं कि जीव माया में पड़कर अपने को भूला रहता है इसलिये प्रभु को पहचान नहीं पाता अर्थात् उनकी शरण में नहीं जाता और इस नश्वर संसार में लिप्त होकर कष्ट पाता है, और जब पहचान लेता है तो क्या होता है बताते हैं -

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥

जब हम प्रभु को पहचान लेते हैं अर्थात् जब जीव को प्रभु के सान्निध्य का सुख मिलता है तो उस सुख और आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता।

गुरुदेव ही माध्यम हैं प्रभु से युक्त कराने के लिये। अतः गुरु की शरण में आकर, उनकी अमृत वाणी का पान करके, उनके दिये दिव्य राम-नाम के मन्त्र का जाप करके हम परमात्मा से युक्त हो सकते हैं। फिर हम बाहर से आनन्दित रहेंगे।

नव वर्ष शिविर

नव वर्ष 2022 के आगमन पर भी लगभग 70 साधकों ने साधना-मन्दिर में उपस्थित होकर गुरु महाराज के चरणों में जाप, भजन, कीर्तन, प्रसाद आदि अर्पित करके 31 दिसम्बर 2021 की मध्य रात्रि में आरती करके आगामी वर्ष 2022 के लिये गुरुदेव का शुभाशीर्वाद प्राप्त किया।

हृदय के उत्तम भावों से परम लाभ

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्री जयदयाल जी गोयन्दका

(कल्याण भाग-87, पृष्ठ 670-673 से उद्धृत)

मनुष्य को अपने हृदय का भाव उत्तम-से-उत्तम बनाना चाहिये। हृदय का भाव उत्तम होने पर मनुष्य की सारी चेष्टाएँ अपने-आप उत्तम होने लगती हैं। इसके विपरीत उत्तम से-उत्तम कर्म भी भाव-दूषित होने के कारण निम्न श्रेणी का बन जाता है। एक मनुष्य यज्ञ, दान, तप, देवताओं की उपासना आदि का अनुष्ठान यदि अपने शत्रु को मारने या दु:ख पहुँचाने के उद्देश्य से करता है तो उसके वे यज्ञ, दान, तप, उपासना आदि अनुष्ठान यद्यपि शास्त्र-विहित होने से स्वरूपत: सात्त्विक हैं, फिर भी दूसरे का अनिष्ट करने का दुर्भाव होने के कारण तामसी हो जाते हैं और **'अधो गच्छन्ति तामसा:'** (गीता 14/18) – इस न्याय के अनुसार उनके करने वाले मनुष्य अधोगति को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार बर्तन माँजना, झाड़ू देना आदि सेवा रूप कर्म निम्न श्रेणी के होने पर भी निष्काम भाव से किये जाने पर करने वाले का भाव उत्तम होने के कारण सात्त्विक हो जाते हैं और **'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था'** (गीता 14/18) – इस न्याय के अनुसार वैसे कर्म करने वाले मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। अत: समझना चाहिये कि क्रिया की अपेक्षा भाव प्रधान है।

यज्ञ-दान-तप रूप क्रिया की अपेक्षा भी भगवान् के नाम का जप और उनके स्वरूप का ध्यानरूप क्रिया उत्तम है, किन्तु यह क्रिया सात्त्विक होने पर भी सकाम भाव से की जाय तो राजसी बन जाती है। इसी प्रकार यज्ञ-दान-तप रूप क्रिया जप-ध्यान की अपेक्षा निम्न श्रेणी की होने पर भी यदि फल और आसक्ति का त्याग करके निष्काम भाव से की जाय तो परम शान्ति रूप परमात्मा की प्राप्ति करा सकती है। इसलिये जप-ध्यान से भी वह श्रेष्ठ मानी गयी है। गीता के बारहवें अध्याय के बारहवें श्लोक में भी कहा गया है –

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

'ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

अब यह बतलाया जाता है कि उत्तम क्रियाएँ और भाव कौन-कौन-से हैं? नमस्कार करना, स्नान करना, धर्म के लिये कष्ट सहना आदि शरीर की क्रियाएँ हैं, तीर्थ यात्रा करना पैरों की क्रिया है, यज्ञ और दान देना हाथ की क्रियाएँ हैं। गीता, भागवत, रामायण आदि सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन करना वाणी की क्रिया है। देवताओं और महात्माओं का दर्शन करना नेत्रों की क्रिया है। भगवान् के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य को सुनना कानों की क्रिया है, इसी प्रकार भगवान् के नाम, चरित्र और गुणों का मनन एवं चिन्तन करना तथा भगवान् के स्वरूप का ध्यान करना मन की क्रियाएँ हैं एवं किसी आध्यात्मिक विषय का निश्चय करना बुद्धि की क्रिया है। ये सभी उत्तम क्रियाएँ हैं। इन सब उत्तम-से-उत्तम क्रियाओं की अपेक्षा भी हृदय का उच्च भाव सर्वोत्तम है।

श्रद्धा, प्रेम, दया, क्षमा, शान्ति, समता, सन्तोष, सरलता, ज्ञान, वैराग्य, निर्भयता, आन्तरिक पवित्रता, निष्कामता आदि – ये सब हृदय के उत्तम भाव हैं। ये सभी आत्मा का उद्धार करने वाले हैं। जिस क्रिया के साथ इनका संयोग हो जाता है, वह क्रिया भी उत्तम-से-उत्तम बन जाती है। मनुष्य को चाहिये कि उपर्युक्त भावों को ईश्वर की कृपा के प्रभाव से अपने हृदय में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए देखता रहे। इस प्रकार देखने वाले की उत्तरोत्तर उन्नति होती चली जाती है। हृदय के भाव उत्तम होने पर मनुष्य के आचरण स्वत: ही उत्तम होने लगते हैं। उसे अपने आचरण सुधारने के लिये कोई अलग प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उसके दुर्गुण-दुराचारों का अपने-आप

ही अभाव हो जाता है; क्योंकि जहाँ प्रेम होता है, वहाँ द्वेष सम्भव नहीं; जहाँ दया है, वहाँ हिंसा के लिये स्थान नहीं; जहाँ क्षमा है, वहाँ क्रोध रह ही नहीं सकता; जहाँ समता है, वहाँ विषमता कहाँ और जहाँ शान्ति है, वहाँ विक्षेप असम्भव है। इसी प्रकार अन्य सभी भावों के विषय में समझ लेना चाहिये।

जब हम किसी के साथ व्यवहार करें, उस समय हमें उसके साथ प्रेम, विनय, निरभिमानिता, उदारता और निष्काम भाव आदि से युक्त होकर व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार करने पर क्रिया स्वाभाविक ही उत्तम-से-उत्तम होने लगती है।

प्रथम हमें गीता के सोलहवें अध्याय के पहले से तीसरे श्लोक तक बतलाये हुए दैवी सम्पदा के लक्षणों को अपने हृदय में देखते रहना चाहिये। ऐसा करने पर ईश्वर की कृपा से हम दैवी सम्पदा से सम्पन्न हो सकते हैं। फिर हमें गीता के बारहवें अध्याय के तेरहवें से उन्नीसवें श्लोक तक जो भगवत् प्राप्त भक्तों के लक्षण बतलाये गये हैं, उनको अपनाना चाहिये। वे लक्षण उन भक्तों में तो स्वाभाविक होते हैं और साधक के लिये वे अनुकरणीय हैं। अतः उन भक्तों के भावों से भावित होकर हमें उनको अपने हृदय में देखते रहना चाहिये। ऐसा करने पर ईश्वर की कृपा से हम वैसे ही बन सकते हैं। जो मनुष्य उन भक्तों के भावों को लक्ष्य बनाकर उनका अनुकरण करता है, वह भगवान् का अतिशय प्यारा है। भगवान् ने गीता के बारहवें अध्याय के बीसवें श्लोक में कहा है –

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम-प्रेमभाव से सेवन करते हैं, वे भक्त तो मुझको अतिशय प्रिय हैं।

भाव का बड़ा भारी महत्त्व है। एक तो वास्तव में भगवत् प्राप्त महापुरुष है और दूसरा एक उच्चकोटि का साधक सच्चा जिज्ञासु है। वह जिज्ञासु जब महात्मा को पाकर उनको तत्त्व से जान जाता है, तब वह भी उसी प्रकार तुरन्त महात्मा बन जाता है, जिस प्रकार वास्तविक पारसमणि के साथ स्पर्श होते ही लोहा तुरन्त सोना बन जाता है। यदि वह सोना न बने तो समझ लेना चाहिये कि या तो वह पारस पारस नहीं है, कोई पत्थर है, या वह लोहा लोहा नहीं है, लोहे का मैल है, अथवा उन दोनों के बीच काष्ठ, वस्त्र आदि किसी तीसरे पदार्थ का व्यवधान है। इसी प्रकार यदि महात्मा का संग करके जिज्ञासु महात्मा नहीं बन जाता तो समझना चाहिये कि या तो वह महात्मा सच्चा महात्मा नहीं है या वह जिज्ञासु सच्चा श्रद्धालु नहीं है, अथवा जिज्ञासु में कोई संशय, भ्रम आदि का व्यवधान है।

यह पारस की तुलना भी महापुरुष के लिये उपयुक्त उदाहरण नहीं है; क्योंकि महापुरुष तो पारस से भी बढ़कर है। किसी कवि ने कहा है –

पारस में अरु संत में, बहुत अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करै, वह करै आप समान॥

अभिप्राय यह कि पारस लोहे को सोना बना सकता है, पर उसे पारस नहीं बना सकता, किन्तु महात्मा तो जिज्ञासु को अपने समान महात्मा बना सकता है।

प्रथम तो ज्ञानी महात्माओं का मिलना ही दुर्लभ है और यदि वैसे महात्मा मिल जायँ तो उनको तत्त्व से पहचानना कठिन है। तत्त्व से जानने के बाद तो उनमें श्रद्धा होकर तुरन्त ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। बिना पहचाने तो भगवान् के दर्शन से भी कल्याण नहीं हो सकता। उदाहरण के लिये दुर्योधन भगवान् श्री कृष्ण को यथार्थरूप से नहीं जानता था, वरन् अश्रद्धा के कारण उसका उनमें उलटा दुर्भाव था, अतः वह उनका दर्शन करके भी उनसे मिलने वाले यथार्थ लाभ से वंचित रहा। इधर अर्जुन भगवान् श्री कृष्ण को यथार्थरूप से जानते थे, इसलिये वे भगवान् के परम धाम में चले गये। भगवान् के प्रति जिसका जैसा भाव होता है, उसी के अनुसार उसे लाभ होता है। दुर्योधन भगवान् की एक अक्षौहिणी सेना लेकर ही सन्तुष्ट हो गया, किन्तु अर्जुन ने तो

भगवान् का ही वरण किया। इसमें भाव ही प्रधान है। भगवान् श्री कृष्ण जिस समय कंस के धनुष-यज्ञ में गये, उस समय वहाँ जिनकी जैसी भावना थी, उसी के अनुसार उनको वे दीख पड़े।

'जिस समय भगवान् श्री कृष्ण बलराम जी के साथ रंगभूमि में पधारे, उस समय वे पहलवानों को वज्र के समान कठोर शरीर, साधारण मनुष्यों को नररत्न, स्त्रियों को मूर्तिमान् कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को दण्ड देने वाले शासक, माता-पिता को शिशु, कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को विराट् (बड़े भयंकर), योगियों को परम तत्त्व और भक्तशिरोमणि वृष्णिवंशियों को साक्षात् अपने इष्टदेव जान पड़े।' (भागवत 10/43/17)

श्री तुलसीकृत रामायण के बालकाण्ड (1/241/4) में भी धनुष-यज्ञ के समय भगवान् श्री राम के सम्बन्ध में यही बात कही गयी है –

जिन्ह के रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

'जिनकी जैसी भावना थी, प्रभु की मूर्ति उन्होंने वैसी ही देखी।' भगवान् को जो पुरुष जिस भाव से देखता है, भगवान् उसके लिये वैसे ही हैं। गीता के चौथे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक में भी कहा गया है –

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

'हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ।'

भगवान् तो दर्पण की भाँति हैं। मनुष्य जिस रूप और आकृति को लेकर दर्पण के सम्मुख होता है, वैसा ही उसमें दीखता है। इसी प्रकार जिसके मन का जैसा भाव होता है, वैसा ही भगवान् में प्रदर्शित होता है। सूर्य भगवान् सब जगह समान हैं, अर्थात् सबको समान भाव से प्रकाश देते हैं, किन्तु दर्पण में उनका प्रतिबिम्ब पड़ता है, काठ में नहीं और सूर्यमुखी शीशा तो उनकी रोशनी को लेकर कपड़े, रूई आदि को जला देता है, किन्तु साधारण शीशा नहीं जला सकता। इसमें उस सूर्यमुखी शीशे की ही विशेषता है, सूर्य का प्रभाव तो सब जगह समान ही है। इसी प्रकार भगवान् तो सब जगह समान ही हैं, किन्तु मनुष्य अपनी श्रद्धा और भक्ति से उनसे अधिक से-अधिक चाहे जितना लाभ उठा सकता है।

भगवान् ने गीता के नौवें अध्याय के उनतीसवें श्लोक में कहा है –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

'मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मुझे अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

इसमें भक्त के भाव की प्रधानता है। भगवान् सभी जगह विराजमान हैं, किन्तु बिना श्रद्धा के उनसे कोई कुछ भी लाभ नहीं उठा सकता। जिसमें भगवद् विषयक आस्तिक बुद्धि नहीं है, वह नास्तिकता के कारण परम शान्ति और परम आनन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति से वंचित रहता है। गीता के दूसरे अध्याय के छियासठवें श्लोक में कहा गया है –

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

'न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मि का बुद्धि नहीं होती और न उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना ही होती है तथा भावनाहीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्य को सुख तो मिल ही कैसे सकता है।'

श्री हनुमान जी का भगवान् श्री राम के प्रति बहुत उच्चकोटि का भाव था*, इस कारण भगवान्

*श्री हनुमान जी भगवान् राम से कहते हैं –

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार। की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार॥

(रा.च.मा. 4/1/10, 4/1)

ने उनके लिये कहा है –

समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्यगति सोऊ॥

(रा.च.मा. 4/3/8)

'सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं, पर मुझको सेवक प्रिय हैं; क्योंकि वह अनन्यगति होता है।'

इसमें भाव ही प्रधान है। अत: अपना भाव उत्तम-से-उत्तम बनाना चाहिये। सबको उत्तम भाव से देखने पर देखने वाले को भी लाभ है और जिसको देखा जाता है, उसे भी लाभ है। इसी प्रकार दूसरे को दुर्भाव से देखने पर देखने वाले की भी हानि है और जिसे देखा जाता है, उसकी भी हानि है। यदि हम अपने लड़के, छात्र या नौकर के लिये यह कहते हैं कि वह नीच है, दुष्ट है और इस प्रकार समय-समय पर उनके दुर्गुण-दुराचारों की चर्चा करते रहते हैं तो इससे उन छात्र, बालक तथा नौकर पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वे हम से विमुख या उपरत हो जाते हैं एवं वे उस भाव से भावित होकर निम्न श्रेणी के बन जाते हैं। अत: इस तरह कहने और सुनने वाले दोनों की ही सिवा हानि के कोई लाभ नहीं है। ऐसे व्यवहार से दोनों का ही पतन है। अत: ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। जिसके साथ उत्तम व्यवहार किया जाता है, वह भी सुधर सकता है। एक व्यक्ति विश्वास करनेयोग्य नहीं है और उसका हम विश्वास करते हैं तो दिन पाकर वह विश्वासपात्र बन सकता है; क्योंकि वह समझता है कि ये मुझ पर विश्वास करते हैं तो मुझे इनके विश्वास के अनुसार ही रहना चाहिये। इस प्रकार हमारे उच्च भाव से उसका और हमारा-दोनों का उत्थान होना सम्भव है। अत: हमें सबको उच्च भाव से ही देखना चाहिये।

अपने स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु, मित्र आदि में कोई अवगुण हो तो उसे दूर करने के लिये उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये और उसमें गुण बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये। इस प्रकार करने से उसके साथ अपना प्रेम बढ़ता है और उसका सुधार भी होता है। भगवान् श्री राम ने सुग्रीव को प्रेम का तत्त्व समझाते समय प्रेमी के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह बतलाते हुए कहा है –

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने प्रेमी मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलाये, उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपाये। भगवान् श्री राम जिस प्रकार अपने भक्तों के अवगुणों की ओर नहीं देखते थे, उसी प्रकार हमें भी अपने आश्रित स्त्री, पुत्र, नौकर आदि के अवगुणों को न देखकर उनके साथ दयापूर्वक कोमलता और प्रेम का व्यवहार करना चाहिये। इस विषय में भगवान् श्री राम का भाव हमारे लिये अनुकरणीय है। भगवान् श्री राम के स्वभाव के विषय में श्री भरत जी महाराज कहते हैं –

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ।
दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

'प्रभु सेवक का अवगुण कभी नहीं मानते। वे दीनबन्धु हैं और अत्यन्त ही कोमल स्वभाव के हैं।'

अत: हमें सबके साथ दया, प्रेम, विनय, कोमलता, त्याग और उदारतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये।

सर्वोत्तम भाव तो यह है कि सब कुछ परमात्मा का स्वरूप है। जैसे स्वप्न में मनुष्य जिस संसार को देखता है, वह उसके मन का संकल्प होने के कारण उससे अभिन्न है, उसी प्रकार यह सारा संसार भगवान् का संकल्प होने के कारण उनसे अभिन्न है, अर्थात् भगवान् का स्वरूप ही है, इस भाव से देखने वाला मनुष्य उच्च कोटि का माना जाता है। भगवान् ने गीता में कहा है – 'बहुत जन्मों के अन्त के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही हैं' – इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है (7/19)। यह सर्वोत्तम भाव है। ऐसा न हो तो दूसरा उत्तम भाव यह है कि सब में भगवान् व्यापक हैं। गीता के नौवें अध्याय के चौथे श्लोक में भगवान् कहते हैं –

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।'

'मुझ निराकार परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।' **यो मां पश्यति सर्वत्र** (गीता 6/30) 'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है।' तथा श्रुति भी कहती है –

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।'

(शुक्लयजुर्वेद 40/1)

'अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह समस्त ईश्वर से व्याप्त है।' उपर्युक्त उद्धरणों से यह समझना चाहिये कि जैसे बादलों में आकाश व्यापक है, वैसे ही भगवान् सब में व्यापक हैं, अत: सबकी सेवा ही भगवान् की सेवा है और सबका आदर करना ही भगवान् का आदर करना है। यह भाव भी बहुत उत्तम है।

यदि ऐसा भाव भी न हो तो सब भगवान् के भक्त हैं या सब भगवान् की प्रजा हैं, अत: सभी हमारे भाई हैं इस प्रकार देखना चाहिये; क्योंकि सब ईश्वर के अंश होने से ईश्वर की प्रजा हैं। श्री तुलसीदास जी कहते हैं –

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(रा.च.मा. 7/117/2)

अभिप्राय यह है कि परमात्मा नित्य, शुद्ध, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है एवं उसका अंश होने से आत्मा भी नित्य, शुद्ध, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। अतएव सब प्राणी ईश्वर के अंश होने के नाते हमारे भाई हैं।

जैसे अपने भाई को हैजे या प्लेग की बीमारी हो जाती है तो हम उसके उस संक्रामक रोग से अपनी रक्षा करते हुए उसके हित के लिये वैद्य-डॉक्टरों को बुलाकर या उसी को वैद्य-डॉक्टरों के पास ले जाकर प्रेमपूर्वक उसका इलाज करवाते हैं। उसी प्रकार हमें सबके साथ व्यवहार करना चाहिये; क्योंकि संसार में जितने भी प्राणी हैं, सभी हमारे भाई हैं और उनमें मनुष्य प्रधानता से हमारे भाई हैं। इसलिये सबका जिस प्रकार परम हित हो, वैसे ही हमें करना चाहिये। यहाँ अध्यात्मविषय में यों समझना चाहिये-दुर्गुण-दुराचारों का जो समूह है, वही बीमारी है। ज्ञानी, भक्त-महात्मा ही वैद्य हैं। उनके पास लोगों को ले जाना या उनको लाकर उनसे मिला देना ही रोगी की वैद्य-डॉक्टरों से भेंट कराना है। उनके दुर्गुण दुराचार और दुर्व्यसनों से अपने को बचाना ही संक्रामक रोग से अपनी रक्षा करना है। अतएव हमें हर प्रकार से निष्काम भावपूर्वक सबका परम हित करना चाहिये।

ऐसा भी न हो तो चौथी बात यह है कि संसार में गुण और दोष भरे हुए हैं, किन्तु अपने को तो गुणग्राही होना चाहिये, किसी के दोष की ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये। अवधूत शिरोमणि श्री दत्तात्रेय जी ने जड-चेतनात्मक चौबीस पदार्थों से शिक्षा ग्रहण की और उनके गुणों को धारण किया, इसी प्रकार हमें भी सबके गुण ही ग्रहण करने चाहिये। इस प्रसंग को श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध के सातवें, आठवें और नौवें अध्यायों में विस्तार से देखना चाहिये।

भगवान् श्री राम ने लक्ष्मण से सन्त और असन्त के लक्षण बतलाकर अन्त में यही कहा है –

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(रा.च.मा. 7/41)

इसका भाव यह है कि संसार में माया से रचित गुण और दोष भरे हुए हैं। हमारे लिये सबसे बढ़कर गुण (भाव) यह है कि किसी के अवगुण और गुण दोनों को ही न देखें; क्योंकि गुण-दोषों को देखना ही मूर्खता है। पर यदि देखे बिना न रहा जाय तो गुणों को ही देखना चाहिये, अवगुणों को नहीं; क्योंकि दूसरों के अवगुणों को देखने, सुनने-कहने और मानने में महान् हानि है। नेत्रों से देखने, कानों से सुनने, वाणी से कहने और मन से मानने पर हृदय में वैसे ही संस्कारों का संग्रह होता है और वह मनुष्य फिर वैसा ही बन जाता है। इसके सिवा दूसरों के अवगुणों को कहने-सुनने से एक तो हम उसके दोषों के हिस्सेदार बन जाते हैं और दूसरे उसकी आत्मा को दु:ख पहुँचता है, इसलिये भी हम पाप के भागी होते हैं। अतएव किसी के दुर्गुण-दुराचारों को न तो कहे, न सुने, न देखे और न हृदय में ही स्थान दे।

Prabhu Ka Naam

I recently heard a musical performance where the lead singer started his presentation by saying that he would like to begin by taking the name of the 'ONE who has no name'. This left me wondering - how can we take the name of the One who has no name. It appears that all of us are used to calling the one who has no name, by different names.

He the Almighty was present when nobody was present, as stated in Vedas and Shastras. Therefore logically there was none who could have given Him a name. It is clear that we human beings have chosen to call that power as ISHWAR or GOD. All the names thus given represent that supreme POWER.

Even Baba Gorakhnath describes Him as the one who cannot be named. We find various descriptions of Him being omnipotent, omniscient, omnipresent, but like all religions that have been started by human beings, the name to that POWER must have also been given by our ancestors. There is no doubt that God has countless qualities and we (or our ancestors) started calling God by these qualities themselves. For example we started calling Him SARVESHWAR because He is Ishwar of all.

The Muslims, probably could not describe God's qualities in one word, so they have chosen to quote the number of verse of their holy book describing God, i.e. 786 whenever they have to name Him. Even Christianity has named the son of God as "CHRIST" but they have not named God.

Swamiji chose to name the Almighty as Mother. Swamiji felt that the Supreme Power had all the characteristics of a mother who is benevolent, caring, guiding and loving. It may, therefore, be safer to assume that the names of that POWER have only been given by us human beings. Our ancestors have chosen to call him GOD. 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'! People have chosen to call Him in the image as they see Him, some see him as Friend, some as Mother, Father, Child based on the way they see Him.

In light of the above, we can understand why disciples of Swami Ramanandji respect all religions and do not bar entry of any and everybody in the dham even if they profess to follow the teachings of another saint; or worship any God. We believe that we all draw water in different vessels and the shape or name of the vessel does not change the water. The source remains the same for everybody. Thus, He is present in every religion and it does not matter who you worship.

However, we can also appreciate little difficulty in naming Him when we seem Him in the creation. How do we name the 'UNIVERSAL ENERGY" because it is not only present in the living but also what we call in the non-living. The 'Energy' is present in all the creations. The clay remains the same whether you mould it in the shape of a toy, vessel or a pan. As clay is present in all of them, in the same way He is present in everything be it Jada (fixed) or Jangam (movable), be it object or insect, animal or vegetation and not just human-being only.

Rahim, the great saint and philosopher also wondered as to who in this world can describe Him. He said these talks are about something that is BEYOND everything and

one who describes Him does not know Him for sure, and the one who knows Him is not able to describe Him. Rahim goes further and exclaims that he was surprised because the way in which 'He' is present in a drop is no different from the way 'He' is present in the sea. Rahim observed, that His presence is indescribable. This leads me to conclude that we can neither describe Him nor make others understand Him, but only feel Him. All reasons fail, only faith remains.

Some devotees see him as mother, some as beloved, some as friend, some as warrior, some as a child. They have therefore named the "UNIVERSAL ENERGY" as per their liking and/or convenience. Surprisingly he is everything to everybody. This is possible only because He is in everything and he becomes that in which he is. He becomes a sword; He also becomes a saviour. He becomes a gardener who plants, nurtures and then also becomes the one who plucks the flower. He is the MOTHER, CHILD and the LAP too. How can we name Him?

Ishwar is manifested as Time, Space and Creation. We understand Ishwar to be the basic source present in all creations, just as an atom. An atom has 3 sub particles Proton, Neutron and Electron. All elements are made of these three sub-particles; Air, Water, Earth, Fire and Space. On further division of the subparticles you find quarks. They are neither waves, nor particles. That energy which cannot be described is perhaps called Divine Power or Ishwar.

Therefore, one can conclude that HIS name is not important and perhaps it is unfair to bind him in the confines of a simple name.

Swamiji had also said that the 'DIVINITY' in Swamiji is no different from 'DIVINITY' in each one of us. We just need to realize this.

We call ourselves Hindu; Hinduism is also a name given to people living in the "INDUS VALLEY". So our religion has been our way of life, our beliefs, and our practices. That is why we are all embracing, all accepting and not at war with any beliefs as we see Him in everybody and everything.

Once we realize that we all are pieces of the same cloth then we have no war, no jealousy, no enmity and can have love only, because there is nobody else but He who is present in everybody.

Baba Nanak had said that "His name is nothing but EK ONKAR. In other words He is present in all of us and the void too. You can hear his name being constantly taken by Akash and Prithvi. You can hear the echo of his name. He is present in all of us, and He is 'satnam' i.e. He was, He is and He will be. That's the truth. You can see that we have given Him different names in countries, religious sects and even individuals have given Him a name they fancy. All of them are right since He is OMNIPRESENT, OMNISCIENT. He is ENERGY that can never be created or finished. It can only be transformed.

Baba Nanak had observed in Punjabi, "O AKHRA KOLON VAKHRA". He is different from words. You cannot capture him in words. If you cannot capture Him in words, then how can you give Him a name?

Call Him by any name but see Him in everything and everyone. All the different names are His. He is in all, sound, word and thought.

– Dinesh Bahl

शोक समाचार

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि,

कानपुर निवासी श्रीमती सावित्री गुप्ता का दिनांक 14 दिसम्बर 2021 को निधन हो गया है। उनकी पुत्रवधु श्रीमती राज कुमारी जी ने उनकी स्मृति में गुरुदेव के चरणों में 2,000 रुपये की राशि अर्पित की।

❖ ❖ ❖

हमारे वरिष्ठ साधक एवं कार्यकारिणी के सदस्य श्री अनिल मित्तल जी की की बड़ी बहन श्रीमती सुबोधिनी गुप्ता, सुपुत्री श्री काशीनाथ मित्तल जी (बीसलपुर निवासी) एवं पत्नी श्री राकेश मोहन गुप्ता (मेरठ निवासी) का दिनांक 16 दिसम्बर 2021 को निधन हो गया है। उनकी स्मृति में उनकी पुत्रियों सुश्री शिल्पी जैन एवं सुश्री रैना गोयल ने गुरुदेव के चरणों में कुल एक लाख रुपये अर्पित किये।

❖ ❖ ❖

बरेली निवासी हमारे साधक श्री विष्णु अग्रवाल जी के पिताजी श्री राज कुमार अग्रवाल जी का दिनांक 31 दिसम्बर 2021 को निधन हो गया है। श्री विष्णु जी ने अपने पिताजी की स्मृति में गुरुदेव के चरणों में 5,100 रुपये की राशि अर्पित की।

❖ ❖ ❖

हमारी वरिष्ठ साधिका श्रीमती स्वतन्त्र भण्डारी जी की बड़ी बहन श्रीमती चन्द्र प्रभा जी का दिनांक 21 जनवरी 2022 को चण्डीगढ़ में निधन हो गया है।

❖ ❖ ❖

परम पूज्य स्वामी जी की बड़ी बहन पवित्रा बहल जी की पुत्रवधु तथा मेरठ निवासी हमारी वरिष्ठ साधिका श्रीमती स्वतन्त्र भण्डारी जी की बड़ी बहन श्रीमती गायत्री बहल जी का दिनांक 29 जनवरी 2022 को लखनऊ में निधन हो गया है।

❖ ❖ ❖

पूज्य गुरुदेव से विनम्र प्रार्थना है कि इन सभी दिवंगत आत्माओं को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा इनके परिवार जनों को इनका वियोग सहने की यथायोग्य शक्ति प्रदान करें।

❖ ❖ ❖

गीता में अध्यात्म

भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाशक्ति स्वरूप हैं, गीता में सगुण रूप हैं, अर्जुन जीवात्मा है और उसके सभी सगे सम्बन्धी, गुरु, मित्र संसार रूप हैं। अर्जुन के जीवन में समस्या का उदय होता है कुरुक्षेत्र के मैदान में। भगवान की शरण में जाता है अर्जुन बल्कि भगवान उस युद्ध में अर्जुन के सहायक हैं जो स्वयं युद्ध में भाग न लेने के लिये कह चुके हैं। अर्जुन के अन्तर में विचारों की आँधी आती है युद्ध करना उचित है या अनुचित है। स्वयं ही युद्ध के लिये तैयार हुआ था अपना स्वाभिमान बनाये रखने के लिये जब कौरवों द्वारा ललकारा गया था। इस स्थिति में भगवान अर्जुन को अध्यात्म की ओर प्रेरित करते हैं और इस विज्ञान (अध्यात्म) की शुरुआत होती है।

अर्जुन युद्ध भूमि में अपने गुरु, पितामह, भाई बन्धु मित्र व अन्य सगे सम्बन्धियों को अपने विरुद्ध खड़े देखकर विचार करता है युद्ध में जीतने के लिये इन सबको मुझे मारना होगा। गुरु पर मैं कैसे हथियार उठाऊँगा इत्यादि, इत्यादि। यह सोचकर कि इस युद्ध के बड़े भयंकर परिणाम होंगे, वंश नष्ट हो जायेगा, वह अपने हृदय में बड़ा पश्चाताप कर रहा था। रास्ता नजर नहीं आ रहा था तो अपने सखा और सहायक श्री कृष्ण को अपनी मनोदशा का वर्णन किया और युद्ध न करने का निश्चय किया। यहाँ पहला अध्याय पूर्ण होता है। और इस अध्याय को विषाद योग कहा गया है। सामान्य दृष्टि में यह केवल विषाद ही नहीं अपितु 'गीता सन्देश' के पातृत्व का पहला लक्षण है। गहरा विषाद ही मनुष्य के जीवन में अध्यात्म की पहली सीख बन जाती है।

'अध्यात्म' का अर्थ (मेरे मन में) यही आता है 'आत्म का साक्षात्कार'। हम अपने को जानें, अपने को परमार्थ के लिये प्रेरित करें, वही कार्य करें जो हमारा सब जन सुखाय और कर्तव्य हो। अर्जुन अपने आप में कर्म का निर्णय नहीं कर पा रहा था इसलिये भ्रम में पड़ गया था और भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना करता है मैं कोई निर्णय नहीं ले पा रहा हूँ, आपकी शरण में हूँ और आप द्वारा शासन करने योग्य हूँ। अर्जुन शरणागति चाह रहा था। अब भगवान अर्जुन को कर्म का रहस्य बताते हैं। अर्जुन की आत्मा बहुत गहरे हृदय तक युद्ध की विभीषिका को समझ नहीं रही थी सो युद्ध उपयुक्त नहीं लग रहा था। भगवान श्री कृष्ण उसकी एक-एक समस्या को बड़े मनोवैज्ञानिक तरह से समझाते हैं। कहते हैं तुम्हारा धर्म सत्यता के मार्ग पर चलकर अपने अधिकार के लिये अगर युद्ध भी करना पड़े तो वह भी करना ही कर्तव्य बन जाता है। आज हम सभी के सामने जीवन में एक युद्ध ही चलता रहता है। वह युद्ध हमें समाज की भलाई के लिये लड़ना ही चाहिये। कुरीतियों के खिलाफ धर्म स्थापना हेतु, सामाजिक सौजन्य के लिये इत्यादि, इत्यादि। इन सब सेवा कार्यों में मरने जीने की चिन्ता करना हितकर नहीं है। गीता के अनुसार युद्ध में मरना नहीं होता वह तो क्षत्रिय का धर्म होता है और वह वीरगति को प्राप्त होता है। और भी मरता तो शरीर है 'आत्मा' तो कभी मरती नहीं। जो मरता है उसका फिर जन्म भी शाश्वत नियम है। गीता के अध्याय 2 के

श्लोक संख्या 17 व 18 में भगवान कहते हैं –

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

गीता के अध्याय 2 का श्लोक संख्या 27 –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

गीता का अध्याय 2 अध्यात्म की दृष्टि से बहुत ज्ञान प्रसार करने वाला अध्याय है। इसके श्लोक संख्या 12 व 13 में जीवन तथा मृत्यु की व्याख्या की है।

मृत्यु के बारे में कहा है यह पुराने कपड़े बदलकर दूसरे नये कपड़े पहनने के समान है। स्थूल शरीर को धारण करने वाला आत्मा, जिसको देही भी कहा जाता है, शरीर के क्षीण होने पर अर्थात् कर्म करने योग्य न रहने पर, दूसरी देह धारण करती है। यह स्थिति मृत्यु होती है केवल शरीर की। उसमें रहने वाला देही (आत्मा) तो फिर दूसरे शरीर को धारण करती है। अतः जो मरता है वह जन्म भी लेता है अवश्य। अतः मृत्यु के विषय में भयभीत होना और शोक करना अकारण है।

तदुपरान्त अध्यात्म की दृष्टि से एक ऊँची बात बताई गयी कि हमारी इन्द्रियों के विषय ही हमें सुख-दुःख देने वाले होते हैं। मानव सभी कार्य कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही करता है। कर्म करने से सुख-दुःख की अनुभूति होना साधारणतः निश्चित है। अध्यात्म में उन सभी प्रतीतियों को सहन करने का भगवान विधान करते हैं। साधक के सीखने लायक यह बहुत बड़ा गुण है।

देह धरे को दण्ड है सब काहूं को होय।
ज्ञानी भोगे ज्ञान सों, मूरख भोगे रोय॥

गीता के अध्याय 2 का श्लोक संख्या 38 –

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

भगवान अध्यात्म मार्ग के पथिक के सुख-दुःख को लाभ हानि, व जय पराजय को सम दृष्टि से देखने का विधान करते हैं। अर्थात् इनसे विचलित न होने को कहा है। ये सब साधना के सूत्र हैं। युद्ध और साधना यहाँ समानार्थक शब्द प्रतीत होते हैं। यह अनमोल युक्ति है साधना पथ पर आगे बढ़ने के लिये। यह सब सांख्य योग के सूत्र भगवान ने अर्जुन के रूप में हम सब प्राणी मात्र के लिये बताये हैं। सांख्य योग, ज्ञान योग या बुद्धि योग ही समझिये। सांख्य योग जड़-चेतन, प्रकृति-पुरुष या परमात्मा-महाशक्ति के स्वरूप को बताता है अतः कुछ विस्मयकारी या कठिन लगता है। परन्तु गीता अध्ययन से धीरे-धीरे सब समयानुसार बुद्धिगत होता चला जाता है। आगे भगवान इस धारणा के बाद इसे कर्म योग की ओर ले जाते है और कहते हैं समुचित बुद्धि से किया गया कार्य बन्धनकारी नहीं होता अतः संस्कारों की उत्पत्ति नहीं करता है। अगर संस्कार न बने और पुराने क्षीण होते जायें तो एक स्थिति ऐसी आ जायेगी कि आप परमात्मा के स्वरूप की तरफ बढ़ते जायेंगे।

- रवि कान्त शुक्ला

ईश-प्रदत्त साधन व उनका उपयोग

ज़रा सोचिये! आपने अपने नौकर को एक हजार रुपये देकर कहा कि इसमें से सौ रुपये अपने खाने-पीने पर खर्च करके शेष नौ सौ रुपयों से आटा, चीनी व चावल खरीदकर गुरुद्वारे में दे आना जहाँ प्रतिदिन गरीबों को मुफ्त भोजन कराया जाता है। वह नौकर देर रात लड़खड़ाते हुए कदमों से घर लौटता है और नशे में धुत होने के कारण सच बोल देता है कि उसने सारा धन मौज-मस्ती में अपने ही ऊपर खर्च कर डाला। ऐसे में क्या आप उसे बिना दण्डित किये छोड़ देंगे? नहीं न? क्यों? क्योंकि उसने आपके द्वारा प्रदत्त धनराशि का दुरुपयोग किया जबकि सदुपयोग और दुरुपयोग करने की उसे पूरी छूट थी।

ज़रा सोचिये! कहीं हम लोग भी ऐसा ही अपराध तो नहीं कर रहे? क्या हमारे पास जो कुछ भी है वह मालिक का दिया हुआ नहीं है? और क्या हम उस मालिक के दिये हुए सब-कुछ का सदुपयोग कर रहे हैं? या फिर दुरुपयोग ही कर रहे हैं? आइये हम ज़रा गहराई से विश्लेषण करें।

सर्वप्रथम अपने शरीर को ही लें। भगवान् ने जो नेत्र दिये हैं वे सन्मार्ग पर चलने के लिये दिये हैं, आध्यात्मिक साहित्य पढ़ने के लिये दिये हैं, स्वाध्याय करने के लिये दिये हैं। यदि हम ऐसा न करके गन्दे दृश्य देखते हैं, गन्दा साहित्य पढ़ते हैं, किसी पर कुदृष्टि डालते हैं, आँखें दिखाकर दूसरों को डराते हैं तो यह दुरुपयोग करना है। इसी प्रकार कानों से अपनी प्रशंसा सुनते हैं, दूसरों की बुराई सुनते हैं, गीता, रामायण भागवत आदि नहीं सुनते हैं तो यह कर्णेन्द्रियों का दुरुपयोग हुआ।

इसी प्रकार हम अपनी दसों इन्द्रियों द्वारा सत्कर्म करके उनका सदुपयोग या दुरुपयोग – कुछ भी कर सकते हैं। जब हम इन्द्रियों के दुरुपयोग की बात करते हैं तो गीता के अनुसार निष्क्रियता भी दुरुपयोग है। निष्क्रियता की गीता के अध्याय 3 में पर्याप्त भर्त्सना की गई है। श्लोक 8 में स्पष्ट कहा गया है कि अर्जुन! तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

श्लोक 14-15 में कहा गया है कि सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥

श्लोक 16 में कहा गया है कि जो पुरुष अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता, केवल इन्द्रियों के द्वारा भोगों में रमण करता है वह पापायु व्यर्थ ही जीता है।

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

इन्द्रियों के दुरुपयोग की श्रेणी में पापाचार व पद का दुरुपयोग अर्थात् घूसखोरी भी आता है। ज़रा सोचें जिस पुलिस अधिकारी अथवा न्यायाधीश को न्याय की रक्षा हेतु नियुक्त किया गया है वही यदि घूस लेकर अपराधी की रक्षा करने लगे अर्थात् रक्षक ही भक्षक बन जाये तो क्या वह देश व समाज को अपरिमित हानि नहीं पहुँचाता है और इस प्रकार वह विशेष दण्ड का भागी नहीं होगा? ऐसे व्यक्ति भूल जाते हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी है।

गीता के अध्याय 13 के श्लोक 13 में कहा गया है कि वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर

नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है; क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

वह हर समय हर जगह सब कुछ देखता रहता है।

इसके अतिरिक्त जो कुछ भी धन-सम्पत्ति, मकान-दुकान, वस्त्र-आभूषण, कुटुम्ब-परिवार हमें मिला है सब उस परमपिता परमेश्वर ने कृपा करके उन सबका सदुपयोग करने के लिये दिया है। धन का सदुपयोग सात्त्विक दान, दीन-दुखियों की सहायता करने से ही होता है। ऐसा न करने से धन या तो हमारे विनाश का कारण बनता है या हमारे मरने पर नष्ट हो जाता है।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि अपनी नेक कमाई में से किया गया दान ही सात्त्विक होता है। कुछ लोग मनौती मान लेते हैं कि उल्टे-सीधे गैर-कानूनी, समाज-विरोधी कार्य करके, खाने-पीने की वस्तुओं में मिलावट करके या नकली-दवाओं का उत्पादन करके (जो जानलेवा होती हैं), या तस्करी करके, चरस-गांजे का व्यापार करके, जमाखोरी करके जो कमाई होगी, उसका एक भाग किसी देवी-देवता की प्रतिमा पर सोने के आभूषण चढ़ा कर प्रयोग कर लेंगे, ऐसा दान कभी सात्त्विक नहीं हो सकता। उल्टे वह धन का दुरुपयोग होगा।

अब ज़रा सूक्ष्मता से विचार करें कि जो कुछ भी भगवान ने कृपा करके हमें दिया है उसमें सबसे मूल्यवान क्या है? सबसे मूल्यवान है समय। क्योंकि जीवन की अवधि निश्चित है, वह पल-पल घटती जाती है और जो समय बीत जाता है वह पलट कर नहीं आता। अन्य वस्तुओं के साथ ऐसा नहीं है। जिस पल का भी सदुपयोग हमने नहीं किया, आलस्य या प्रमाद में बिता दिया, वह हमने नष्ट कर दिया, अत्यन्त मूल्यवान वस्तु को खो दिया और इस प्रकार भगवान् के दिये हुए इस अमूल्य उपहार का दुरुपयोग किया। रात्रि-दिवस के एक चक्र में सभी को चौबीस घंटों का बराबर समय मिला है। इसमें से हम कितने का सदुपयोग करते हैं और कितने का दुरुपयोग – यह पूर्णतया हमारे हाथ में है।

अब रह जाता है अहंकार। कहा जाता है कि भगवान् ने हमारे उपयोग के लिये सभी चीजें बहुत अच्छी दी हैं किन्तु अहंकार देकर बहुत गड़बड़ कर दी। क्योंकि अहंकार से बचना बहुत कठिन है, बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-मुनि भी इसका शिकार होते देखे गये हैं और यही हमारे पतन का कारण होता है। परन्तु इसका एक दूसरा पहलू भी है – वह है सात्त्विक अहंकार। सात्त्विक अहंकार ही हमारे जीव-रूप में अस्तित्त्व का कारण है। अहंकार के कारण ही जीव ईश्वर से भिन्न है। अहंकार रहित होते ही जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है, उसका अस्तित्व अलग रहता ही नहीं। जो अहंकार पतन का कारण होता है वह बुद्धि के दुरुपयोग के कारण होता है। विनम्रता के सहज स्वाभाविक गुण को छोड़ने के कारण होता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में एक स्थान पर लिखा है –

अस अभिमान जाइ जनि भोरे।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

अभिमान या अहंकार तब अवांछित होता है जब वह शरीर अथवा शरीर से सम्बन्धित किसी वस्तु का होता है। यदि जीव भाव में स्थित होकर सोचें कि मैं ईश्वर का अंश हूँ, परमात्मा का सच्चा पुत्र हूँ, मैं शुद्ध आत्मा हूँ, पवित्र आत्मा हूँ, शक्तिशाली आत्मा हूँ, ईश्वर के सभी गुण मुझ में भी हैं, तो वह अहंकार स्वागत योग्य है। ईश्वर से प्रार्थना करें कि ऐसा अभिमान हम में जागृत करे और शारीरिक अहं से बचाये।

- रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'

15.11.2021 से 12.2.2022 तक के दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Bank of India, Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Punjab National Bank, Haridwar
A/c No.: 00112010000220
I.F.S. Code: PUNB0001110

कृपा करके जमा करवाई हुई राशि का विवरण एवं अपना नाम और पता पत्र अथवा फोन द्वारा साधना धाम कार्यालय में अवश्य सूचित करें। जिससे आपको रसीद आसानी से प्राप्त हो जायेगी।

– **विष्णु अग्रवाल,** प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 8273494285

1. मेसर्स देशराज एंड संस, चण्डीगढ़	51000	21. सचिन अग्रवाल, फरीदाबाद	11000
2. मेसर्स एस.एम. इण्डस्ट्रीज, कानपुर	51000	22. मधु कपूर, फरीदाबाद	10000
3. सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	51000	23. संजय राजोना, नई दिल्ली	10000
4. डॉ. शिल्पी जैन, मेरठ	50000	24. सुनीति देवी अग्रवाल, पीलीभीत	10000
5 डॉ. शिल्पी जैन, मेरठ	50000	25. कृष्णा सुमन भण्डारी, दिल्ली	10000
6. दानपेटियों से निकली राशि-19.12.21	48369	26. चंचल त्रेहन, चण्डीगढ़	10000
7. कर्नल एम.जी. त्रेहान, चण्डीगढ़	40000	27. मीरा चन्देल	10000
8. आशा रानी, जेवर (नोएडा)	31000	28. राजेश गुप्ता, दिल्ली	7500
9. श्रीमती सुधा	25000	29. साधना धाम में से स्क्रैप की बिक्री	7400
10. सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	21000	30. सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	6500
11. राजेश गुप्ता/कृष्णा बाला गर्ग, दिल्ली	11610	31. शशि कान्त कुलश्रेष्ठ, गाजियाबाद	6101
12. सुशील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	11000	32. सुनीति देवी, पीलीभीत	6000
13. आकाश मल्होत्रा, नई दिल्ली	11000	33. साधना धाम में से स्क्रैप की बिक्री	5550
14. रसिक इंफ्रा	11000	34. गुप्तदान ऑनलाइन	5100
15. शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	11000	35. राकेश अग्रवाल, दिल्ली	5100
16. सत्यवती गोयल, पिलखुआ	11000	36. सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	5100
17. आविष्कार मेहरोत्रा, गुरुग्राम	11000	37. गुपतदान ऑनलाइन	5100
18. सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	11000	38. विष्णु अग्रवाल, बरेली	5100
19. आर.के. गुप्ता, हलद्वानी	11000	39. बालामाऊ साधक समूह	5100
20. अजय कुमार अग्रवाल, बरेली	11000		

(शेष अगले पृष्ठ पर)

15.11.2021 से 12.2.2022 तक के दानदाताओं की सूची

(पिछले पृष्ठ से)

40. गोपाल कृष्ण लाढ़ा, मिर्जापुर	5100
41. ज्ञानवती शुक्ला, कानपुर	5100
42. अरुणा पाण्डेय, कानपुर	5100
43. विजय कुमार कंसल, बरेली	5100
44. अजय आनन्द, गाजियाबाद	5100
45. तनीषा सिंह, नई दिल्ली	5100
46. हिमालय राजेश प्रकाश, दिल्ली	5000
47. श्रीमती सुनीति देवी, पीलीभीत	5000
48. डॉ. सरोज सागर, नई दिल्ली	5000
49. हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000
50. संजय अग्रवाल, फरीदाबाद	5000
51. प्रतीक दीक्षित, नोएडा	5000
52. अमिता अग्रवाल, नई दिल्ली	5000
53. सुनीति देवी, पीलीभीत	5000
54. हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000
55. सुरेन्द्र कुमार व राधा अग्रवाल, बीसलपुर	5000
56. अजय कृष्णा दीक्षित	5000
57. गुप्त दान	4500
58. विष्णु अग्रवाल, बरेली	4100
59. चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	4100
60. चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	4100
61. विष्णु अग्रवाल, बरेली	4100
62. आनन्द कुमार अग्निहोत्री, लखनऊ	4004
63. सुधीर कुमार अवस्थी, कानपुर	4000
64. उर्मिला अग्रवाल, कानपुर	3551
65. चैतन्य कक्कड़, गुरुग्राम	3100
66. चन्द्रभान गुप्ता, नई दिल्ली	3100
67. आविष्कार मेहरोत्रा, गुरुग्राम	3100
68. हरिओम गुप्ता, औरैया	3100
69. पुष्पा गुप्ता, कानपुर	3100
70. चन्द्रभान गुप्ता, दिल्ली	3100
71. अजय अग्रवाल, गाजियाबाद	3100
72. आविष्कार मेहरोत्रा, गुरुग्राम	3100
73. रवि कान्त शुक्ला, देहरादून	3000
74. विकास मिश्रा, बरेली	2501
75. चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	2500
76. आलोक कुमार मित्तल, बीसलपुर	2500
77. मनोज कुमार गुप्ता, बीसलपुर	2500
78. गुप्तदान ऑनलाइन	2400
79. श्री सूरजभान शुक्ला	2200
80. मुकेश कुमार गुप्ता, दिल्ली	2100
81. अविनाश ग्रोवर, नई दिल्ली	2100
82. श्रीमती उर्मिला देवी, अहमदाबाद	2100
83. कैलाश नारायण अग्रवाल, बीसलपुर	2100
84. दक्ष खण्डेलवाल, दिल्ली	2100
85. सलोनी मल्होत्रा, दिल्ली	2100
86. योगेश कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	2100
87. दीपा शुक्ला व रोहित शुक्ला	2100
88. दिशा खण्डेलवाल, दिल्ली	2100
89. रमेश चन्द व उषा गुप्ता, गाजियाबाद	2100
90. अनिरुद्ध अग्निहोत्री, रुड़की	2100
91. योगेन्द्र पाण्डेय, कानपुर	2100
92. जी.डी. बहल, दिल्ली	2100
93. गुप्त दान, कानपुर	2100
94. कमलेश मित्तल, बीसलपुर	2100

आभार

सभी प्रिय साधक भाई बहनों को राम राम!

हर्ष का विषय है कि आप सब के सहयोग से साधना धाम हरिद्वार में बरामदों के फर्श पर पत्थर लगाने का कार्य जन्म-दिवस शिविर के आयोजन से पूर्व ही सम्पन्न हो गया है जो कि काफी समय से लम्बित था। इसके अतिरिक्त डिस्पैंसरी में भी सिकाई की नई मशीन स्थापित की गई है।

इस प्रकार के सुधार कार्य साधना धाम में गुरु महाराज की कृपा व प्रेरणा तथा साधकों के सहयोग से होते ही रहते हैं। इसके लिये जिन साधकों ने जिस प्रकार से भी सहयोग दिया है, मैं हृदय से उनकी आभारी हूँ और आशा करती हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा।

धन्यवाद!

गुरु के नाते
आपकी बहन
रमन सेखड़ी
अध्यक्षा, साधना परिवार

श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2022

14 अप्रैल 2022 को पूज्य गुरुदेव को श्रद्धांजलि स्वरूप अखण्ड जाप होगा। 15 अप्रैल को प्रातः अखण्ड जाप की पूर्ति के समय गंगा के पावन तट पर पूज्य गुरुदेव को श्रद्धा सुमन अर्पित किये जायेंगे। तत्पश्चात् मन्दिर में आकर साधकगण अपनी श्रद्धांजलि के भाव गुरुदेव के चरणों में प्रस्तुत करेंगे। 15 अप्रैल को ही दोपहर को भण्डारा होगा। इसी दिन दोपहर बाद शिविर विधिवत् प्रारम्भ होगा और 21 अप्रैल को शिविर की पूर्ति होगी।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक 18 अप्रैल 2022 को कार्यालय में होगी। **20 अप्रैल को जनरल बॉडी की सभा रात्रि के समय धाम के प्रांगण में होगी। नई कार्यकारिणी का चुनाव होगा।**

साधना शिविर में भाग लेने वाले साधक अपने आने की सूचना मैनेजर साधना-धाम को 15 दिन पूर्व देने की कृपा करें।

पत्रिका में प्रकाशनार्थ भजन, लेख, संस्मरण आदि रचनायें पत्रिका के उपसम्पादक श्री रमेश चन्द्र गुप्त, 1018, महागुन मैंशन-1, इन्दिरापुरम, गाजियाबाद-201014, फोनः 0120-4126836, मोबाइलः 09818385001 के पते पर भेजें। लेख आदि पूज्य गुरुदेव की साधना पद्धति से मेल खाते हुए होने चाहियें।

श्रीमद्भागवत कथा

(15 से 22 जुलाई 2022)

कथा-वाचक - बाल व्यास पण्डित ब्रह्मरात हरितोष (एकलव्य)

कथा स्थल - स्वामी रामानन्द साधना धाम, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार

समय - प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक / अपराह्न 3 बजे से 5 बजे तक।

आप सभी से अनुरोध है कि श्रीमद्भागवत कथा का रसास्वादन करके अपना जीवन सफल बनायें।

साधना परिवार की कार्यकारिणी के चुनाव

प्रिय साधकगण, वर्तमान साधना परिवार की कार्यकारिणी का कार्यकाल अप्रैल 2022 को पूरा हो जायेगा। 20 अप्रैल 2022 को नवीन कार्यकारिणी का चुनाव करवाना निश्चित हुआ है। जो साधक इसमें भाग लेकर साधना परिवार की सेवा करना चाहते हैं वे अपना नाम 10 अप्रैल तक कार्यालय भेज दें। सभी साधकों से अनुरोध है कि वे चुनाव में उपस्थित होकर परिवार की नई कार्यकारिणी समिति बनाने में अपना सहयोग दें।

नवीन कार्यकारिणी का चुनाव कोविड-19 की यथा-समय परिस्थिति के अनुसार श्री गुरुदेव निर्वाण-दिवस साधना शिविर-2022 के आयोजन के दौरान साधना धाम में आयोजित कराने का प्रयत्न किया जायेगा। यदि सम्भव नहीं हो पाया तो चुनाव ऑनलाइन जूम मीटिंग पर कराये जा सकते हैं।

विजयेन्द्र पाल भण्डारी
सचिव, साधना परिवार

रामायण पाठ

(23 से 31 जुलाई 2022)

वाचक - भागवताचार्य एवं गीतामर्मज्ञ श्री सुशील जी मिश्र

कथा स्थल - स्वामी रामानन्द साधना धाम, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार

समय - प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक / अपराह्न 3 बजे से 5 बजे तक।

आप सभी से अनुरोध है कि रामायण पाठ का रसास्वादन करके अपना जीवन सफल बनायें।

बाल-साधना-शिविर-2022

शिविर स्थानः स्वामी रामानन्द साधना-धाम,
संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

समय : 2 जून से 7 जून 2022 प्रातः तक

कुछ वर्षों से ग्रीष्मावकाश में बाल-साधना शिविर का आयोजन सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इस शिविर का मुख्य उद्देश्य है बालकों का आध्यात्मिक, चारित्रिक एवं शारीरिक विकास करना। पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी की साधना पद्धति की सरल ढंग से जानकारी दी जायेगी एवं व्यावहारिक साधना के अन्तर्गत व्यावहारिक ज्ञान दिया जायेगा। शिविर में जाप का आवाहन, गीता पाठ, भजन एवं गोष्ठी का संचालन बालकों के द्वारा ही होगा अतः तैयारी करके आयें। प्रातः भ्रमण, खेल व योग के कार्यक्रम भी होंगे।

आवश्यक सामग्री : अपने पहनने के आवश्यक कपड़े, तौलिया, टूथपेस्ट व ब्रश, कंघा, साबुन, भ्रमण के लिए जूते, कापी, पैन एवं पेन्सिल।

बिस्तर एवं बर्तनों की व्यवस्था साधना-धाम की ओर से होगी।

कृपया अपने आने की सूचना 15 दिन पूर्व साधना-धाम में व्यवस्थापक महोदय को पत्र या फोन द्वारा अवश्य दें। (फोन नं. 01334-210215, 01334-240058, मोबाईलः 09219990126)

प्रतियोगितायें

बच्चों को तीन ग्रुपों में बाँटा जाएगा।

1. पहला ग्रुप 7 वर्ष से 10 वर्ष तक के बच्चे - शिक्षाप्रद कहानियाँ।
2. दूसरा ग्रुप 11 वर्ष से 14 वर्ष तक के बच्चे - सन्तों की कहानियाँ एवं संस्मरण।
3. तीसरा ग्रुप 15 वर्ष से 20 वर्ष के बालक व बालिकायें - दिये गये विषय पर सामूहिक चर्चा (Group Discussion)।

श्री स्वामी रामानन्द जी साधना साहित्य

1.	आध्यात्मिक विकास	इन पुस्तकों में श्री स्वामी जी ने अपनी विकासवादी नवीनतम साधना पद्धति का विस्तार से वर्णन किया है।
2.	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)	
3.	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)	
4.	Evolutionary Outlook on Life	
5.	Evolutionary Spiritualism	
6.	जीवन-रहस्य तथा उत्पादिनी शक्ति	काम शक्ति तथा अध्यात्म विषय पर स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
7.	गीता विमर्श	श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम 7 अध्यायों की स्वामी जी द्वारा विशद् व्याख्या
8.	व्यावहारिक साधना	पूज्य स्वामी जी द्वारा लिखित तीन लेखों – (1) साधकों के लिये, (2) दम्पत्ति के लिये, (3) माता-पिता के प्रति का संकलन
9.	कैलाश-दर्शन	पूज्य स्वामी जी ने कुछ साधकों के साथ कैलाश-पर्वत की यात्रा व परिक्रमा की थी। उस यात्रा का एवं उनकी आत्मानुभूति का विशद् वर्णन
10.	गीतोपनिषद	श्रीमद्भगवद्गीता के आठ से अठारह अध्याय तक स्वर्गीय श्री के.सी. नैयर जी द्वारा व्याख्या
11.	हमारी साधना	श्री पुरुषोत्तम भटनागर द्वारा सम्पादित
12.	हमारी उपासना	
13.	साधना और व्यवहार	
14.	अशान्ति में	
15.	मेरे विचार	
16.	As I Understand	
17.	My Pilgrimage to Kailsah	
18.	Sex and Spirituality	जीवन-रहस्य (प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित पुस्तकें)
19.	Our Worship	हमारी साधना
20.	Our Spiritual Sadhana Part-I	आध्यात्मिक साधना (प्रथम खण्ड)
21.	Our Spiritual Sadhana Part-II	आध्यात्मिक साधना (द्वितीय खण्ड)
22.	स्वामी रामानन्द-एक आध्यात्मिक यात्रा	स्वस्पष्ट प्रो. डा. लक्ष्मी सक्सेना
23.	पत्र-पीयूष	कु. शीला गौहरी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के पत्रों का संकलन
24.	स्वामी रामानन्द-चरित सुधा	स्व. डा. कविराज नरेन्द्र कुमार एवम् वैद्य श्री सत्यदेव
25.	स्वामी रामानन्द-वचनामृत	श्री जगदीश प्रसाद द्विवेदी द्वारा गुरुदेव की पुस्तकों से संकलन
26.	मेरी दक्षिण भारत-यात्रा	पूज्य सुमित्रा माँ जी द्वारा दक्षिण भारत यात्रा का रोचक वर्णन
27.	पत्तियाँ और फूल	भजन, पद, कीर्तन, आरती आदि का संकलन
28.	दैनिक आवाहन विधि	स्वामी जी की साधना प्रणाली पर आधारित - श्रीमती महेश प्रकाश
29.	Letters to Seekers	कु. शीला गौहरी एवं श्री विजय भण्डारी द्वारा साधकों के नाम स्वामी जी के अंग्रेजी पत्रों का संकलन
30.	आत्मा की ओर	
31.	जीवन विकास - एक दृष्टि	Evolutionary Outlook on Life का हिन्दी अनुवाद
32.	विकासात्मक अध्यात्म	Evolutionary Spiritualism का हिन्दी अनुवाद
33.	गुरु के प्रति निष्ठा	तेजेन्द्र प्रताप सिंह
34.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 1)	अनाम साधिका
35.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 2)	
36.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 3)	
37.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 4)	
38.	माँ की विभूति - भक्ति रस (भाग 5)	
39.	श्रीराम भजन माला	श्री सूर्य प्रसाद शुक्ल 'राम सरन'
40.	माँ का भाव भरा प्रसाद गुरु का दिव्य प्रसाद	मीरा गुप्ता
41.	पत्र-पीयूष सार	
42.	गीता पाठ	
43.	गृहस्थ और साधना	
44.	प्रभु दर्शन	
45.	प्रभु प्रसाद मिले तो	

जन्म दिवस के अवसर पर पूज्या रमन सेखड़ी जी (अध्यक्षा) गुरुदेव को श्रद्धा सुमन अर्पित करती हुई

जन्म दिवस के अवसर पर श्री विष्णु गोयल सपत्नीक श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए

जन्म दिवस के अवसर पर श्री संजय सेखड़ी एक अन्य साधक के साथ गुरुदेव की आरती करते हुए

जन्म दिवस के अवसर पर केक काटते हुए श्री विष्णु गोयल जी, श्री विजयेन्द्र पाल भण्डारी, श्रीमती रमन सेखड़ी व श्रीमती कृष्णा भण्डारी

जन्म दिवस के अवसर पर
(ऊपर) श्रीमती रमन सेखड़ी जी प्रवचन करती हुई तथा (नीचे) श्री आर.सी. गुप्ता, श्री रविकान्त भण्डारी व अन्य साधकगण आरती करते हुए

जन्म दिवस के अवसर पर
(ऊपर) श्री अनिरुद्ध अग्निहोत्री जी शिविर पूर्ति पर आरती करते हुए तथा (नीचे) श्री दीपक दीक्षित जी भजन सन्ध्या में भजन गाते हुए